महाभाव – दिनमणि श्रीराधाबाबा

(प्रथम खण्ड)

पृष्ठ संख्या 401-500 तक

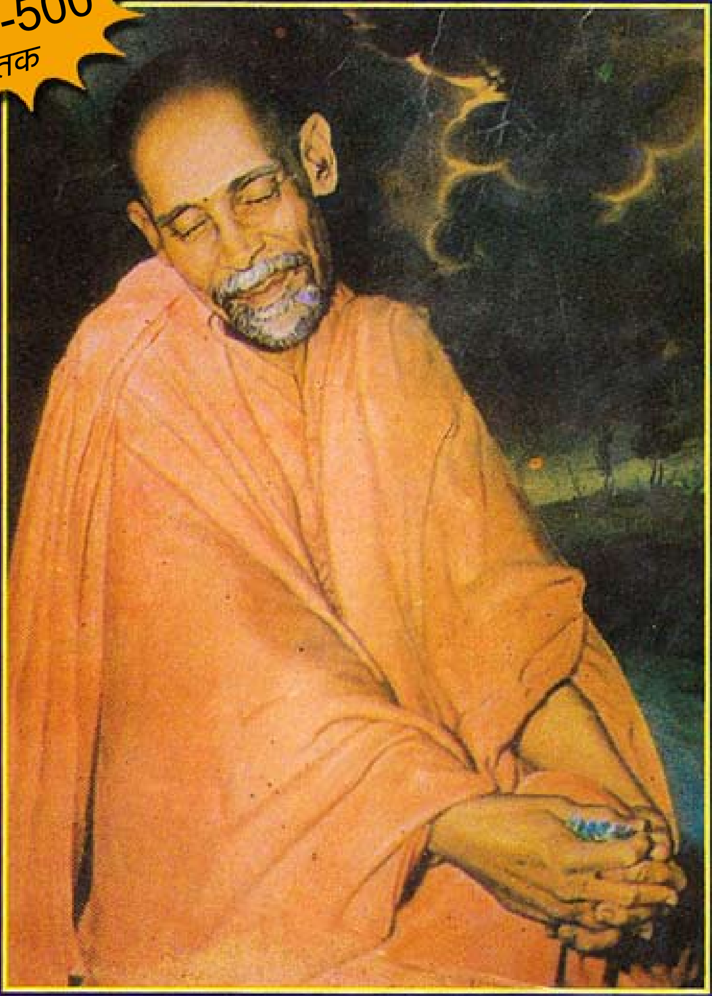

साधु कृष्णप्रेम

मंजुलीला भाव

अष्टयाम लीला

ऐसे काल बिताओ, निसदिन।
भोर साँझ लौं, साँझ भोर लौं लाड़ लड़ाओ दोऊ जन।
छिन विच्छेप न होइ टहल में, कीजै यह अदभुत पन।
सब रस को रस सार विहार, सो चीन्हौं हम रसिक जन।
विविध भाँति के और भजन जे, लौन बिना ज्यों व्यंजन।
श्री राधा-पद-कमल-कृपा-बिनु को पावै रस को कन।
श्री वृन्दावन-वास रासि-रस, समय प्रबंध परम धन।
अलबेली श्रीबंसीअलि बलि यह मानो मेरे मन।

श्री अलबेली बंसीअलिजी निवेदन करते हैं :-- हे मेरे मन, तू यह मेरी बात मान ले। इस प्रकार दिन-रात का तू(काल) समय व्यतीत कर। साँझ से लेकर भोर तक और भोर से लेकर साँझ तक तू प्रिया-प्रियतम दोनों जनों का लाड़ लड़ाया कर। इन दोनों की सेवा में तेरा क्षण भर भी विक्षेप नहीं हो। यह अनोख व्रत तू ग्रहण कर। सारे रसों का सार विहार रस है, यह रसिक जनों ने पहचान की है। दूसरे अनेक प्रकार के जो भजन हैं, वे तो नमक बिना जैसे व्यंजन होय, वैसे बेस्वाद हैं। श्री राधारानी के चरणों की कृपा के बिना रस का कण किसी को नहीं मिल पाता। श्रीवृन्दावनधाम का वास ही रस की ढ़ेरी है और समय को विहार-सेवा में नियुक्त करना ही परम धन है।

आओ ! अब श्री मंजुलीला भाव में पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबा की निशा एवं दिवा अष्टयाम सेवा क्या रहती थी, इस प्रकरण पर प्रकाश ड़ालें। यह अष्टयाम लीला पू० गुरुदेव ने मुझे सन् १९५१ में संकेतित की थी, जिसे मैंने लिपिबद्ध करके १९५६ ई. में पू० गुरुदेव को पुस्तकाकार रूप में पढ़ने एवं स्वीकृति के लिये समर्पित की थी। काष्ठ-मौन लेते समय पू० गुरुदेव ने मात्र बारह व्यक्तियों को इसे देने का आदेश दिया था। इन बारह व्यक्तियों को मैं अपनी हस्तलिपि में लिखकर दूँ, ऐसा उनका मन्तव्य था। बारह व्यक्ति निम्न थे -- १. सावित्री बाई (पू०पोद्दार महाराज की पुत्री) २. श्रीमति राधाबाई (पू० पोद्दार महाराज की दौहित्री) ३. राधेश्याम पालड़ीवाल ४. कुंजबिहारी पालड़ीवाल ५. श्री विष्णुहरि डालमिया ६. श्रीमती ललिता डालमिया ७. श्रीमती रमादेवी सरावगी ८. श्री गजाननजी सरावगी ९. श्रीमती इन्दु सरावगी १०. श्री मोतीजी पारीक ११. श्री चिम्ननलालजी गोस्वामी १२. श्री रामस्नेहीजी।

पू० गुरुदेव के काष्ठ मौन के पश्चात मैं आर्थिक दुरवस्थावश इतना समय ही नहीं प्राप्त कर सका कि सबको वितरण करने इतनी प्रतियों में यह ग्रन्थ लिख सकूँ। इसकी एक मौखिक टेप करके श्री इन्दु सरावगी को अवश्य दे पाया था। उसके पास वह सुरक्षित है या नष्ट हो गयी पता नहीं। पश्चात् गुरुदेव ने इस अष्टयाम लीला में अपनी श्रीशिवभगवानजी फोगला को लिखी लीलायें भी सम्मिलित कर देने का सुझाव दिया था। श्रीशिवभगवानजी पोद्दार वाली लीलाएँ तो केलिकुंज के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री वृन्दावन वर्णन

प्रफुल्लित वन विविध रंग झलकत यमुना तरंग
सौरभ घन आमोदित अति सुहावनो ...
चिन्तामणि कनक भूमि छबि अदभुत लता झूमि
शीतल मंद अति सुगन्ध मलय आवनो
सारस हंस शुक चकोर नृत्यत चित्रित सुमोर
कल कपोत कोकिल कल मधुर गावनो
युगल-रसिक-वर-विहार परमानँद छबि अपार
जयति चारु वृन्दावन परम भावनो....

उज्ज्वल आनन्द से परिपूर्ण, विविध दिव्य सुगंधित समीर सेवित, श्री राधाकृष्ण युगल किशोर के रस विलास से सदा संतत उल्लसित, अपरिसीम सौरभ से चंचल चंचरीकों की झंकार से निनादित, महा प्रेम-रस-तरंगों से हिल्लोलित यह वृन्दावन है। नये-नये पत्र पुष्पों से सुशोभित विटप समूहों में यहाँ नित नूतन सौन्दर्य स्फुटित है, प्रत्येक फल, पुष्पादि में यहाँ अपूर्व मकरन्द संचित है। विलक्षण सौरभ से दसों दिशायें आमोदित हैं। सर्वत्र अशोक, मौलश्री, चम्पा, माधवी, आदि लताएँ पुष्पित हो रही हैं। स्थान-स्थान पर कलिन्द नन्दिनी की मनोहर उर्मियाँ स्थल को सिक्त कर रहीं हैं। रसमय सरोवरों में अतिशय शोभा भरे स्वर्णकमल-प्रस्फुटित कमलों के दल वायु प्रवाह से चंचल हो रहे हैं।

पुष्प गुच्छों से आच्छादित सुसज्जित मनोहर कुंज श्रेणियाँ है। सरोवरों पर, हृदों पर, असंख्य वराट, वराटी, हंस, हंसिनियाँ केलिरत हैं। वृक्षों पर लिपटी लता श्रेणियों में विराजित असंख्य विहंगम प्रिया-प्रियतम की निशा-विहार की भावना से भावित हुए उनकी एकान्त मिलन की छवि को नेत्रों में भरे ध्यानावस्थित हैं। आनन्द-रस-सिन्धु की तरंगों में निमग्न पशु-पक्षी, लता-तरु, कीट-पतंग सभी एक अभिनव रसमयी प्रतीक्षा की मुद्रा में स्थित हैं। सुपुष्पित, फलित लता वल्लरियों से परिवेष्टित तरुश्रेणियों की निराली ही शोभा हैं। विविध मणियों से जटित उद्भासित भूमि तल है। उसमें समीर ने पुष्प परागों का आस्तरण आस्तृत कर रखा है।

निद्राभाव

प्रिया प्रियतम निभृत निकुञ्ज में शयन कर रहें हैं। दोनों ही निद्राभाव समुद्र में तल्लीन हैं। निद्रा महाभाव का अर्थ ही है समस्त व्रज वृन्दावन रूप दृष्य सिमट कर समाहित हो जाय नील-पीत द्युति महाभाव रूप चिन्मय रस सिन्धु में। अनिर्वचनीय और अचिन्त्य का निर्वचन तो हो ही नहीं सकता। गिरा बस इतना ही संकेत दे सकती है कि पता नहीं महासिन्धु नील है कि पीत। एक क्षण वह नील प्रतीत होता है परन्तु दूसरे ही क्षण वह आत्मसात् हो जाता है एक असीम उत्ताल पीत लहर से। वह लहर समग्र को पीत महासिन्धु में परिणत कर देती है। परन्तु दूसरे ही क्षण फिर नील लहर

उच्छलित होती है और समग्र पीतता को अपने में विलीन कर लेती है। अब लगता है यह महाभाव सच्चिन्मय सिन्धु नील ही नील है। परन्तु क्योंकि वहाँ प्राकृत काल मान है ही नहीं, अत: उसे दूसरे क्षण भी नहीं कहा जा सकता, फिर अनन्त असीम पीत लहर उत्थित होती है और यह कथन भी नहीं बनता, क्योंकि नील लहर आ ही जाती। अब उसे कैसे नील कहें और कैसे पीत कहें।

यह सभी महाभाव लहरें पूर्ण संविन्मयी हैं अत: महाभाव कलेवर रानी क्षण में ही रसराज प्रियतम श्यामसुन्दर हो जाती हैं। और श्यामसुन्दर दूसरे ही क्षण राधा हो जाते हैं। अत: यह विलक्षण निद्राभाव पल-पल निमेष-निमेष रानी को प्रियतम के रूप में और प्रियतम को रानी के रूप में समग्रत: परिवर्तित करता रहता है।

और इस समय इस निद्रा महाभाव रससमुद्र का ऐसा उद्दाम उफान होता है कि इसकी लहरें समग्र गिरि श्रृंगों को, गिरि को, सम्पूर्ण तरुश्रेणियों को, समग्र वज्रप्रदेश को, प्रदेश के चर-अचर प्राणियों को अपने में लीन कर अस्तित्वहीन कर देती है। शुक, कपोत कोकिल, मयूर, जलचर एवं स्थलचर सभी डूब जाते हैं। कहाँ गयी ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा सब सखियाँ, सभी मंजरियाँ-परिचारिकाएँ, सब अस्तित्वहीन, सत्ताहीन, हो गयीं हैं। इस महानिद्राभाव रस का सागर ऐसा उमड़ा है कि इसने काल को, दिशाओं को, सर्व देश को, लीलास्थलियों, लीला-परिस्थितियों को, सब को आत्मासात् कर लिया है। मात्र दो उच्छलित तरंगें शेष हैं, एक तरंग नीली रस सिन्धु है और दूसरी विशाल असीम भावतरंग पीली है। इन तरंगों का कोई तल है ही नहीं। ये नित्य अतल हैं। जब इनमें महाज्वार आता है बस उत्तुंग तरंगों के ही रूप में यह लीलायमान रहता है। यह उत्तुंग सच्चिन्मयी नीली लहर ही साँवर प्रियतम है और पीतद्युति सच्चिन्मयी भाव तरंग ही राधा, प्रिया, रानी हैं।

ये सच्चिन्मयी लहरें उत्तुंग उछाल लेती हैं और तब एक लहर दूसरी लहर को अपने में परिणत कर लेती है। नीली लहर पीत लहर में परिणत हो जाती है और पीत लहर नीली तरंग बन जाती है। रानी साँवर में परिणत हो जाती है और साँवर रानी हो जाते हैं। अब कौन रानी और कहाँ साँवर - इदमित्थं व्यक्तित्व तो है ही नहीं। पृथक् अहंकार हैं ही कहाँ ? अब जब अघटन-घटना-पटीयसी लीला-महाशक्ति महाभाव रससिन्धु में ज्वार को थाम देती हैं, तभी भाटा आता है। तब ये संविन्मयी महाभाव तरंगें ही उपल बन

जाती हैं, बस तरुजाल व्यक्त हो जाते हैं, ये उर्मियाँ ही वन के रूप में परिणत हो जाती हैं।

अरे भाई ! तुम्हारे नयनों में व्रजेन्द्रनन्दन एवं उसकी प्रिया की चरण रज का अंजन लगाकर जरा गौर करके देखो ! तुम्हें किसी में भी, न ललिता में, न विशाखा में, न चित्रा में, न चम्पकलता में, न इन्दुलेखा में, न तुंगविद्या में, न ही किसी मंजरी में, दासी में, न पक्षियों में, न वनचरों में, न नन्दभवन में, वृषभानुपुर में, न ही सखाओं में, महलों में कहीं भी इस विशुद्ध संविन्मयी रस सुधा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलेगा। कहीं कुछ भी अन्य वस्तु जब है ही नहीं तो मात्र रस ही रस, भाव ही भाव तो व्यक्त हुआ मिलेगा।

निभृत निकुञ्ज में प्रिया-प्रियतम की शोभा

यह स्वत: सिद्ध है कि इन सबके व्यक्त होने का अर्थ ही है कि प्रिया प्रियतम में निद्रा महाभाव अब प्रशमित हो रहा है। लौकिक अर्थ में प्रिया प्रियतम अब जग गये हैं। लो, वृन्दादेवी प्रकट हो गयीं और शुक, सारिका, मयूर, कोकिला, चातकादि पक्षियों का कलरव चतुर्दिक् प्रारंभ हो जाता है।

कक्खटी वानरी वल्लरी पर आसीन सारिका को अस्फुट संकेत देती है और सारिका लवंग शाखा को सुशोभित कर रहे शुक की समाधि भंग करती हुई उसे जाग्रत करती है --"भाई, सावधान होओ, यह पूर्वी पवन जो सौरभ वहन करता प्रवाहित हो रहा है यह सरोरुहों के अर्ध-विकास से प्रसरित हो रहा है -- निशावसान समीप है।"

और शुक संबोधित कर रहा है मधुकण्ठ कोकिल को, सुग्रीव कपोत को, प्रशान्त मयूर को -- 'भाई ! यह समाधि भाव त्यागो, स्फूर्ति विस्तार करो, देखो ! भ्रमरों का दल कमल वन की ओर धावन करता गुंजार कर रहा है। अरे भाई ! प्रिया प्रियतम की निकुंज अवबोध लीला में सहायक हो जाओ। और भ्रमरों ने प्रभातकालीन मंगल गान करते हुए ताम्रचूड़ को जाग्रत कर दिया।

और ताम्रचूड़ ने अपनी कर्कश आवाज को अति मधुर बनाते हुए बाँग लगायी। वृद्ध विचक्षण शुक निकुंज के बहिर्देश से आकर सभी को संबोधित करता है --"अहो कोकिलों, सुनो । कन्दर्प ने तुम्हें जो अपना वीणायंत्र प्रदान किया है, वह किस अवसर के लिये। उसे बजाओ। परन्तु सावधान

पंचम स्वर में अभी नहीं। पहले मन्द-मन्द स्वर में प्रभाती प्रारंभ करो। युगल दंपति प्रिया-प्रियतम के नील-पीत-द्युति श्रीअंगों में अभी-अभी मुझे एक मनोहर स्पन्दन का दर्शन हुआ है। और अहा ! मेरे प्राणों में उद्वेलन हो उठा और मैं वहाँ से दौड़ता हुआ सभी को सूचना देने के उद्देश्य से आ रहा हूँ। अरे मधुकरों ! पदमों से पराग संचित कर लो। प्रिया प्रियतम के निकुंज से बाहर धरा पर पैर रखते ही प्रथम तुम्हें ही उनके चरणों में भेंट अर्पित करनी है।

अब विचक्षण शुक कपोतों को संबोधित कर रहा है -- भाई ! झींगुरों ने अपनी झन-झन ताल का विराम कर दिया है, अब तुम अपना 'घुत्''घुत्' मृदंग वादन प्रारंभ कर दो। आज मदन स्वयं प्रिया प्रियतम के जागते ही उन्हें अपना नर्तन दिखाना चाह रहा है।

लो, पक्षियों के संकेत को समीर ने सर्वत्र प्रसारित कर दिया। सरिता, सरोवर, प्रपात, ह्रद, गिरि सभी ने यह रसभरा संवाद श्रवण कर लिया। श्वेत कमल, रक्त पद्म एवं नीलोत्पल सभी अभिनव आनन्द में झूमने लगे।

समीर पुष्पों का किंजल्क अपने दूकूल में भर कर समग्र वन की परिक्रमा करता हुआ गवाक्ष-रंध्रों की ओट से निकुंज में झाँकने लगता है। उसकी दृष्टि वहाँ स्थिर हो जाती है, जहाँ गाढालिंगन-जनित सुख में डूबे हुए प्रिया-प्रियतम पद्म पर्यंक में शयित हैं। समीर की इस चेष्टा को राधा किशोरी की प्रिय सारिका सूक्ष्मधी जो उनके निकुंज में ही स्वर्ण दंड़ी पर विराजित है देख लेती है। बूढ़ा विचक्षण शुक तो कुंज के बहिर्देश में चुपचाप अर्ध-निमीलित नेत्र प्रिया-प्रियतम के ध्यान में रत है, किंचित मुसका कर नेत्रों से अत्यन्त रसमय कटाक्ष करता हुआ समीर की भर्त्सना कर उठता है --**"रस तस्कर ! छबि चोर ! किं पश्यसि संधि छिद्रेण।** परन्तु यथार्थतः वह भर्त्सना के मिस से समीर की किया का अनुमोदन ही कर रहा है माधवी लता मुसका उठती हैं एवं समीर को तनिक रोककर उस दर्शन की शब्द-झाँकी की ही करा देने की मूक प्रार्थना करती है। मल्लिका भी पार्श्व में ही सरक आती है, मानो जो कुछ समीर माधवी को कहेगा-- उसका किञ्चित् आस्वादन उसे भी प्राप्त हो जायगा। पाटल समीर का सखा जो ठहरा, पहले ही सब वार्ता सुनकर झूम उठता है। स्वर्णयूथी जो अब तक ध्यानरत थी सजग हुई नयन उन्मीलित कर लेती है।

सौन्दर्य के अधिदेव ने वसन्तश्री के मुख से अंचल अपने हाथों उठा दिया। दोनों वृन्दावन पर विजयाभियान करने चल पड़े।

वृन्दावन के सभी लता-द्रुम अरुण, नील, पीत, एवं श्वेत कुसुमों के विकास से सज्जित हो उठे। सम्पूर्ण कानन ने अपने को प्रिया-प्रियतम के स्वागतार्थ विचित्र परिधान से भूषित कर लिया। जैसे वक्षस्थल पर नीलम का हार शोभा दे रहा हो, इस प्रकार यमुना लहर उठी। पूर्व की अरुणाई से अप्रतिम सुन्दर गिरि की रत्न राशि जगमगा उठी। मानो वृन्दावन के मस्तक पर विराजित रत्नमुकुट झलमला उठा हो। गिरिराज परिसर में स्थित सघन तरुश्रेणी - देवदारु, कदम्ब, शाल, प्रियाल, कोविदारु, अश्वत्थ, निम्ब, तिंतड़ी, शात्मली, इमली, सभी झूम उठे - मानों वृन्दावन देव की कुंचित कृष्ण कुन्तलराशि समीर से प्रिया प्रियतम के जागरण एवं वनागमन का शुभ संवाद सुनकर आह्लाद से झूम उठी हो। मणिमय पर्वतों से निर्गलित मणिद्रव के समान स्वच्छ छल-छल, कल-कल, करते हुए निर्झर मानों वृन्दावन महाराज के आभूषणों की झंकार हो, ऐसे प्रतीत हो रहे थे।

राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, नामक दो अपरिसीम सरोवर मानो वृन्दावन महाराज के तेजोमय ललाट में केसर, कुंकुम एवं चन्दन के दोहरे तिलक झलमला रहे हों। कुण्डों के चतुर्दिक् अवस्थित असंख्य कुंजगृह, उपकुंजों की अगणित श्रेणियाँ जैसे कपोलों पर सुन्दर अभिनव चित्रों का निर्माण किया हो। नीलगगन में उड़ती असंख्य हंसों की पंक्तियाँ मानो देववृन्द वृन्दावन महाराज के मस्तक पर नन्दन कानन के पुष्पों की वर्षा कर रहे हों।

मदन के अधरों पर स्मिति के समान रम्य वृन्दावन अपनी अपरिसीम सुषमा से प्रिया-प्रियतम के वनागमन पर सेवा में संलग्न होने को परमानन्दित हुआ, जागरुक हो गया।

नीलोत्पलों की सुन्दर शय्या में प्रिया-प्रियतम आलिंगन बद्ध प्रेम समाधि में लीन हैं। नवीन अम्बुद राशि को एकत्र कर , अभिनव कौशल से एक अपरिसीम पीयूषवर्षी अप्रतिम चन्द्र का निर्माण किया गया हो, तथा उसकी ज्योत्स्ना सर्वत्र प्रसरित हो रही हो। इस प्रकार नीलसुन्दर प्रियतम के श्री अंगों से शोभा का निर्झर झर रहा है। निर्मल स्वर्ण शिला पर जैसे काश्मीर विलेपित हो और जिसके अन्तराल से कोटि-कोटि राका चन्द्रों की सुस्निग्ध ज्योत्स्ना झर रही हो, जिसकी स्वच्छता और पवित्रता सुरधुनी की शत-सहस्त्र धारा को हेय बना दे रही हो ; वैसी आभा श्रीराधाकिशोरी के अंग-प्रत्यंगों से झलमल कर रही है।

सौन्दर्य सिन्धु में दो कुमुद परस्पर गुँथे निमीलित हों, इस प्रकार किशोरी के नयनों की शोभा है। और शारदीय शशधर के दर्शन करने के कारण पंकज ने अपने नयन मूँद रखे हों - प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के नयनों की विलक्षण शोभा है। श्रीराधाकिशोरी की चूर्ण कृष्ण कुन्तल राशि उनके बाम स्कन्ध को आच्छादित करती हुई प्रियतम श्रीकृष्ण के श्रीअंगों का संस्पर्श कर रही है और प्रियतम के अलकों की कुछ लटें प्रिया के बाम कपोल पर विश्राम कर रही हैं। श्रीराधाकिशोरी के अधर प्रियतम के अधरों से संलग्न हैं।

उरझ्यौ नीलाम्बर पीताम्बर महियाँ।
कुण्डल सौं लरलट बेसर सों पीत पट,
हार ही में वनमाल, बहियन में बहियाँ।
हंस गति अति छबि, अंग-अंग रही फबि,
उपमाऽवलोकिये कों पटत्तर नहियाँ।
काम के कलोल छूटैं सेजहू को सुख लूटैं,
सूर प्रभु विलसत कदंब की छहियाँ।

निकुंज की सजावट अत्यंत मनोहर है। नील-मणियों का मन्द-मन्द नीला प्रकाश सर्वत्र प्रसरित हो रहा है। गवाक्षिकाओं पर पीले मखमल के परदे लगे हैं जो यमुना पुलिन पर प्रवाहित मंद समीर के झौंकों से शनैः शनैः हिल रहे हैं, कम्पित हो रहे हैं। समस्त निकुंज प्रिया-प्रियतम की उन्मुक्त अंग-गंध की सौरभ से पूर्ण आमोदित है। निकुंज के पूर्व एवं दक्षिण के कोने में एक सुन्दर मणिजटित स्वर्ण पीठिका है, जिस पर जल की भरी हुई दो सुन्दर झारियाँ रखी हैं। कुछ पान-पात्र पार्श्व में रखे हैं। उस चौकी के पार्श्व में एक और रत्नजटित स्वर्णपीठीका है जिस पर चौड़े मुख के स्वर्ण निर्मित प्रक्षालन पात्र रखे हैं।

निकुंज के पश्चिम एवं दक्षिण के कोने में एक और सुन्दर रत्नमयी पीठिका है जिस में भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रृंगार की उपयोगी सामग्री सजी रखी हैं। इस सामग्री को रखने वाले पात्र भी अति कलात्मक कृतियाँ हैं। उसी के समानांतर एक और पीठ रखी है जिसमें अति सुन्दर वृहद् रत्न मंजूषा रखी है, एवं जिसके ऊपरी कपाट ऊर्ध्व खुले हैं, जिससे दर्पण पर प्रिया प्रियतम की शयित छबि प्रतिबिंबित हो रही है।

निकुंज की समस्त दीवार स्वर्ण निर्मित है परन्तु यह स्वर्ण इतना सकुमोल स्पर्शयुक्त है मानो किसलय दल हो और इस पदार्थ में रत्नों से ऐसी सुन्दर प्रिया प्रियतम के निशाकालीन विहारलीला की चित्राकृतियाँ विजड़ित हैं जिन्हें देखने से ठीक प्रतीत होता है मानो चित्र नहीं जीवन्त लीलापात्र हैं।

शुक सारिका संवाद

निकुंज के पूर्व दिशा के कोने में प्रिया की अत्यधिक प्रिय सूक्ष्मधी नामक गृह-सारिका एक स्वर्ण-दंडी पर जो छत से लगी रेशमी स्वर्णतारों से ग्रथित रस्सी पर झूल रही है, अवस्थित है।

यह रानी की सूक्ष्मधी नामक गृह सारिका जिसे निभृत निकुञ्जान्तर्गत घटित होने वाली प्रिया प्रियतम की सम्पूर्ण निशा विहार लीला की साक्षी द्रष्टा रहने का सौभाग्य प्राप्त है एवं जो निष्पन्द-नेत्र निशापर्यन्त महाभाव की परमोच्च आह्लाद उर्मियों में तरंगायित होती रही है -- सहसा अपने उन्मीलित नेत्र विकसित कर देती है। वह देखती है प्रभातागमनजनित अरुणाई पूर्व दिशा में फैल रही है।

सारिका - "अरे कोई है ? इस हृदयहीन दुर्बुद्धि मलय-मारुत को अनुशासित करो। इसकी निर्लज्जता तो देखो ! मेरे प्रिया-प्रियतम के सुख में बाधा डालने आ गया है। देखो तो सही, बिना अनुमति लिये ही गवाक्ष रंध्रों के पथ से अन्तर्देश में प्रविष्ट हो गया।"

सारी की उक्ति का विराम होते न होते वृन्दादेवी बहुत धीरे-धीरे हाथ में एक स्वर्ण पिजंर लिये हुए निकुंज द्वार के पास आकर खड़ी हो जाती हैं और गवाक्षिका के छिद्र से भीतर दृष्टि डालती हुइ सारिका को मन ही मन प्रणाम कर अपने हाथ के पिंजरे का द्वार खोल देती हैं। पिंजरे में से विचक्षण शुक एवं शुभा सारिका उड़कर कक्ष के भीतर चले आते हैं। वे भी उसी स्वर्ण दंडी में चुपचाप अवस्थित हो जाते हैं जिस पर गृह सारिका पूर्वतः आसीन थी। वे उस गृह सारिका की परिक्रमा करते हैं, और तब प्रिया प्रियतम की ओर देखने लग जाते हैं। प्रिया-प्रियतम की रूपसुधा-पान कर दोनों तृप्त हो जाते हैं। उन्हें भावमुग्ध देखकर सूक्ष्मधी गृह-सारी बोल उठती है --

"आओ ! बहिन शुभे आओ ! तुम्हारा स्वागत है। मेरे जीवनसर्वस्व वल्लभ प्रियतम एवं वल्लभी प्रिया की अनुपम रूपसुधा का पान कर नयनों को

कृतार्थ करो। अहा ! किञ्चित् दृष्टि डालकर देखो तो सही। इन दोनों की रूपसुधा का मैं सम्पूर्ण निशा निर्निमिष नयनों से पान करती रहती हूँ, परन्तु मेरे नयन तृप्त नहीं होते। बहिन ! इस असीम रूप सागर की एक बूँद भी तो मेरी दो आँखों में नहीं समा पाती। फिर तृप्ति हो भी तो कैसे ?

अहो विचक्षण शुक ! रस विलास से श्रान्त निद्रा-सुख अनुभव करते प्रियतम कैसे भले लग रहे हैं ! नीलोत्पलों की शय्या पर अवस्थित प्रिया-प्रियतम के परस्पर ग्रथित पाद पद्मों को तो देखो ! नखों की ज्योति का तो दर्शन करो ! अहा ! नीलसरोवर में चार अभिनव सरोज प्रस्फुटित हो रहे हों और पाँच-पाँच चन्द्रमाओं की चार पंक्तियाँ उन पद्मस्थलों के अन्तराल से उद्भासित हो रही हों, अहा ! कदली स्तंभ की शोभा अपहरण करने वाली अप्रतिम शोभा राशि परस्पर संनद्ध जंघाओं पर से तो दृष्टि हटती ही नहीं।

अरे शुक ! सम्पूर्ण विश्व को विलक्षण संविन्मय सौरभ का दान करने वाले इन नासा पुटों से प्रवाहित श्वास-प्रश्वासों की ओर तों देखो ! मानो अप्रतिम सौरभशाली दो पूर्ण विकसित पद्म हों और उनके दलों को स्पर्श करता हुआ मन्द समीर प्रवाहित हो रहा हो। अरे शुक ! तुम्हारी घ्राणेन्द्रियाँ तुम्हारे मन और अहंकार सहित इनमें ही विलीन हो जायेंगी।

"अरी बहिन सारिके ! प्रिया-प्रियतम की कुंतल राशि की शोभा तो निहार। मानो मधुपान से मत्त भ्रमरावलि दो पद्मों पर विश्राम कर रही हो।

सारिका रूप-सुषमा का वर्णन करती भावाविष्ट हो जयगान करने लगती है --

अहो ! कांचन-देहिनी शुद्ध स्वर्ण-विडम्बिनी श्रीराधा की जय हो !
ताटंक-धारिणी नील-दुकूलिनी किशोरी की जय हो !
नव रसिक किशोर-मुख-चन्द्र-चकोरी गोरी की जय हो !
विश्व-विमोहन-मनोहारिणी श्यामा महारानी की जय हो !
चूड़ामणि-राजित सुकुञ्चित केशी वृन्दावनेश्वरी की जय हो !
कृष्णाधर-सुधारस-ह्रदिनी वृषभानुनन्दिनी की जय हो !

सारिका के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर शुक भी जयजयकार कर उठता है तत्पश्चात वृन्दादेवी द्वारा आनीता नवागन्तुका शुभा सारिका कहती है -- "बहिन सूक्ष्मधी, तुम्हारे सौभाग्य की सीमा नहीं है। अहा ! सचमुच ही इन

दोनों मुखचन्द्रों पर नयन लगते ही उनमें वे नयन विजड़ित हो जाते हैं। फिर हटना चाहते ही नहीं। बहिन !

मैं अभी बाहर से उड़कर आयी हूँ। मैने देखा ! पश्चिम गगन में चन्द्र अति त्वरापूर्वक अस्ताचल की ओर बढ़ते जा रहे हैं। ऐसा अनुमान होता है कि इन वल्लभ-वल्लभी के मुखचन्द्र की झलक चन्द्रदेव को गवाक्ष रन्ध्रों से मिल ही गयी होगी, तभी न अतिशय लज्जा से वह तेजहीन हो रहे हैं और अस्ताचल में मुख छिपाने की शीघ्रता कर रहे हैं।

फिर शुभा सारिका उन्मत्त सी हुई जयजयकार कर उठती है ।

अहो ! इन्द्रनील-मणि मंजुल वर्ण की जय हो !!
फुल्लनीप-कुसुमांचित कर्ण की जय हो !!
राधिका वदन-चन्द्र-चकोर की जय हो !!!
सर्व बल्लव-वधू-धृति चोर की जय हो !!!!
केंकी-चन्द्र-विराजित-चूड़ की जय हो !!!!!
राधिकोन्नत पयोधर-धारी की जय हो !!!!!!
गौर धातु-तिलकोज्ज्वल भाल की जय हो !
केलि-चंचलित-चंपकमाल की जय हो !
चर्चित-सुरभि-पटीर की जय हो !
स्वर्ण-कान्ति-परिशोभि-कुटीर की जय हो !
प्रेममत्त वृषभानुकुमारी-नागर की जय हो !

शुक सारिका का जयगान सुनकर प्रियतम के नेत्र एक बार विकसित हो जाते हैं परन्तु निद्रा एवं आलस्य वश वे पुनः नेत्र मूँद लेते हैं।

शुभा सारिका पुनः बोल उठती है --

"हे मेरे प्यारे सखा शुक ! मेरे प्राणवल्लभ के मुखराविन्द की ओर तो देख ! इनके अलस भरे नयनों की ओर तो देख ! बिखरी अलकावलि की ओर देख ! ताम्बूल रंजित अधरों की ओर देख !"

विचक्षण शुक भी पुनः जय गान करता नाचने लगता है।

नव जलधर-वर्ण की जय हो।
चंपकोभ्दासि-कर्ण की जय हो।
विकसित-नलिनास्य की जय हो।

विस्फुरन्मन्द-हास्य की जय हो।
कनक-रुचि-दुकूल की जय हो।
चारु बर्हावचूड़ की जय हो।
मुख-जित्त-शरदिन्दु की जय हो।
केलि लावण्य-सिन्धु की जय हो।
कर विनिहित कन्दु की जय हो।
वल्लवी-प्राण-बन्धु की जय हो।

विचक्षण शुक - "हे सारिके ! मैं तुझसे निशावृतान्त सुनने को अधीर हो रहा हूँ। मेरे प्यारे श्यामसुन्दर और प्रिया रात्रि में सुख पूर्वक सो पाये हैं ? इस वन में अनगिनत चक्रवाक युगल हैं। उनके आनन्द कलरव से प्रिया प्रियतम की निद्रा में कहीं अवरोध तो नहीं आया ? मैं देखकर आया हूँ। अभी भी यमुना पुलिन में चकवा और चकवी शोर मचा रहे हैं। पूर्वाभिमुख किये ये प्रिया प्रियतम की गुणावली भी गाते जा रहे थे और अस्त होते हुए चन्द्रमा से कह रहे थे :-- चकवी कहती थी --"चन्द्रदेव ! जाओ, सुख पूर्वक जाओ, पुन: आना ! मैं तुझे अब गाली नहीं दूँगी। इस वन में मेरी प्यारी रानी और प्रियतम नीलमणि का राज्य है। यह राज्य अनन्तकाल तक रहेगा और अनन्त काल तक यहाँ के सभी प्राकृत नियम उलटे पुलटे रहेंगे। चन्द्र सुना है कि तुम्हारे दर्शन होते ही चकवे चकवी का विलगत्व हो जाता है, परन्तु मैं तो मेरे चकवे से एक क्षण के लिये भी कभी भी विलग नहीं हुई। भाई चन्द्र ! देखो ! मेरे नेत्रों में न जाने क्या रोग हो गया है ? मुझे चकवे में, तुझमें, निशा के कृष्णाकाश में, यमुना में, पुलिनवर्ती वृक्षों में, लताओं में, सभी पशु एवं पक्षियों में - यहाँ तक कि भूमि-भवन, गिरि-पर्वत में भी प्यारे श्याम सुन्दर भरे दृष्टि गोचर होते हैं। भाई ! बुरा मत मानना मुझे तो सदा ही यह भ्रम रहता है कि उज्ज्वल गगन में तुम्हारा प्रकाश नहीं प्यारे श्यामसुन्दर के ही मुख-चन्द्र का प्रकाश प्रसरित हो रहा है। इसलिये उड़कर उधर की ओर ही देखने लगती हूँ ; चकवा भी मेरे साथ ही साथ उड़ने लगता है। वह मुझसे ज्यों ही आगे बढ़ता है और उसका तन मेरे दृष्टि पथ में आता है मुझे उसमें भी प्रियतम नन्दनन्दन भरे दृष्टिगोचर होते हैं। फिर मैं विस्तृत आकाश से नीचे उतर आती हूँ। तो मुझे भूमि में भी प्रियतम सर्वत्र दिखने लगते हैं।

एक नहीं, अनन्त रूपों में सर्वत्र वे ही दृष्टिपथ में खड़े मुसकाते दिखते हैं। मैं सोच लेती हूँ - यह मुझे मात्र दृष्टि भ्रम ही है। मेरे नेत्रों में उनकी छबि बस गयी है। बहुत सोचती हूँ - ऐसा क्यों हो गया है ? तब एक ही समाधान मिलता है। हम सभी वन-विहंगमों पर हमारी प्राणप्यारी रानी की दृष्टि पड़ती है - और रानी की दृष्टि में, उनके अणु-अणु में प्रियतम ही प्रियतम भरे हैं इसीलिये हम सभी वन-विहंगमों की ऐसी दशा होगी। अत: चन्द्रदेव ! अपनी असंख्य प्राणों से भी अधिक प्यारी रानी पर न्यौछावर होती हुई तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि शीघ्र से शीघ्र पूर्व गगन में लौट आना। तुम्हारे आने से ही मेरी प्यारी रानी अपने प्रियतम से मिल पाती है अत: देर कदापि मत करना। हम वनवासी रानी की अनन्त करुणा के चिर ऋणी हैं। रानी की छाया पड़ने से ही हम इस अनन्त असीम सौभाग्य की अधिकारिणी बनी हैं। मैं रानी की एक तुच्छ सेविका से प्रार्थना मात्र कर सकती हूँ कि मेरी ओर से शंका मत करना कि चकवी मुझे गाली देगी। शीघ्र से शीघ्र पूर्व गगन में उदय होना मैं हृदय से तुम्हारा स्वागत करूँगी।

हे सारिके ! चक्रवाक भी इसी प्रकार चन्द्रमा से प्रार्थना कर रहा था। मैं तो सशंकित था कि चकवे चकवी की इस आनन्द केलि से प्रिया प्रियतम की निद्रा में व्यवधान तो नहीं आया।

शुक सारिका के वार्तालाप से प्रियतम की निद्रा तो टूट जाती है परन्तु वे प्रिया को हृदय से लगाये उसी प्रकार लेटे रहते है। दोनों में से कोई भी नेत्र खोलता नहीं है। हाँ, दोनों के मुख पर मुसकान खिल उठती है।

सखियाँ उधर गवाक्षिकाओं के छिद्रों में दृष्टि ड़ालकर प्रिया प्रियतम की शोभा निहार निहार कर आनन्द में डूब रही हैं। सारिका पुन: बोलती है :-- व्रजेन्द्र-किशोर प्रिये ! व्रजपुरवासी राजपथ में आवागमन करें, इसके पूर्व ही आप शीघ्र गृह प्रस्थान करें। सुमुखि ! दिनकर अत्यंत वेगपूर्वक उदयाचल का आरोहण कर रहा है। अतएव शीघ्र शय्या परित्याग करो। सखि ! आलस्य त्याग करो। स्वयं जाग्रत होओ और प्रियतम को जाग्रत करो। सखि री ! लोक लज्जा का अवसर उपस्थित हो, यह कदापि उचित नहीं है।

विचक्षण शुक :- नन्द किशोर - भामा की जय हो !

अलबेली वर बामा की जय हो !

रंगीले की जय हो ! प्रिया-प्रेम-पगीले की जय हो ! पियमुखचन्द्र-चकोरी की जय हो ! दुलहिन नित्य किशोरी की जय हो ! प्रिया प्राणधन की जय हो !

रसिक जन-जीवन की जय हो ! राधारमण की जय हो शोभाभवन की जय हो। आनँदकंद की जय हो, श्री वृन्दावनचन्द की जय हो। कृष्ण कृपाल की जय हो ! अम्बुजनयन विशाल की जय हो।

"अहो मेरे प्राण सखा नीलमणि ! प्रिया समग्र निशा की जगी हैं। रमणी जनों का स्वभाव ही है कि उन्हें प्रभात बेला में ही अपने प्रियतम के प्रगाढ़ आलिंगन में बद्ध होने पर ही सुख पूर्वक निद्रा आती है। देखो ! प्रिया कैसी निश्चिन्त हैं इन्हें प्रभात होने का एवं निशावसान का भान ही नहीं है। हे प्यारे ! अपने मुखचन्द्र को आपके मुखचन्द्र से मिलाकर, कर कमलों से आपके कण्ठ देश को धारण कर ये आत्म विस्मृत हो रही है।"

"गोविन्द जागो। प्रिया को जगाओ । देखो ! कालिन्दी अत्यंत विरहातुर है। वे आपाके पथ में नयन बिछाये है। जागो देव ! जागो।"

"देव ! भगवती पौर्णमासी तुम्हारे मुख चन्द्र का दर्शन करने आ पहुँचें, नित्य कर्म सम्पादन कर जननी यशोदा सहित वे आपके शयन कक्ष में प्रवेश करें, इसके पूर्व ही आप शय्या परित्याग कर अपने शयन मन्दिर में प्रवेश कर जायें।

"सखे कृष्ण ! तुम्हारा प्रिय गृह-शुक दक्ष तुम्हारी सेवा में नन्दभवन से उड़ता हुआ अति त्वरापूर्वक आया है। वह सन्देश लाया है कि जननी यशोदा दासियों सहित तुम्हारे शयन-मन्दिर में तुम्हें जगाने पहुँचने ही वाली थीं। उसने यह कह कर उन्हें किसी प्रकार निवृत्त किया है कि - श्रीकृष्ण वन पर्यटन से अति श्रान्त शयित हैं। हे जननी ! उन्हें विक्षेप मत करो। अभी निश्शब्द कार्य करो। दधिमंथन भी किञ्चित् विलम्ब पूर्वक करना ही उचित है।" अतः शीघ्रता पूर्वक जागो, प्रिया को जगाओ और गोष्ठ की ओर निर्जन सुगुप्त पथ से चल पड़ो।

मलयज-रुचि सुन्दर चन्द्रक-चूड़ की जय हो।
संतत-सेवित यमुना कूल की जय हो।
नवाम्बुधि-नील की जय हो।
विलक्षण शील की जय हो। मुखासंगिवंश की जय हो।
शिखण्डावतंस की जय हो।
वराम्भोजनेत्र की सदा ही जय हो।

अप्रतिम सौरभ से वन का कण-कण सुरभित हो उठेगा। देख ! शयन के समय प्रिया-प्रियतम की वनमाला उनके अंगों की दिव्यातिदिव्य सौरभ से सन गई होगी। दिव्य रस से परिभावित वह माला हम सबको आनन्द मत्त कर देगी। प्रिया प्रियतम के नासा पुटों से प्रसरित श्वास निश्वास जन्य दिव्याति-दिव्य सौरभ ही तो हमारा जीवन है। भ्रमरी नृत्य करती है "मेरी प्यारी रानी की अलकावलि की जय। अद्भुत सौरभमयी घन-कृष्ण-कुन्तल-राशि की जय। चन्द्रिका-जटित मणियों से उद्भासित अपरिसीम सौरभवर्षिणी कोमलतम केश राशि की सदा ही जय हो। देख ! मेरे जीवन संगी भ्रमर ! अनन्त कुवलय एकत्रित हों, उनमें अपरिसीम मृगमद का संयोग- हो जाय, पुनः आपार कर्पूरचूर्ण की पुट से वह भावित हो उठे, पश्चात् इस सम्पूर्ण ढेर को किसी सौरभमय सुधासागर में निक्षिप्त कर दें। फिर उसका मंथन हो तथा बिन्दु मात्र सौरभ सार निकल आवे - वह भी श्रीराधाकिशोरी की लटों से प्रसरित स्निग्ध सौरभ धारा की तुलना में अत्यंत तुच्छ हेय ही ठहरेगा। चलो ! उस सौरभ धारा में हम सभी अवगाहन करें।"

भ्रमर - "अहा ! मंगल सुमधुरे ! क्या तुमने कभी प्रिया प्रियतम की अधर सुधा का पान किया। अहा ! उस मधुरिमा से सनी सौरभ का तू आस्वादन पा सकती ? देख ! उस दिन यमुना के उस स्रोत के अंक में प्रस्फुटित अरविन्द कोश में बैठा, मैं किंजल्क का रस ले रहा था। रवि अस्ताचल में समा गये थे। और मैं मुग्ध हुआ उसी कोश में बद्ध हो चुका था। सहसा मुझे नुपूरों की झंकार सुनाई पड़ी। और प्रिया की कृपा से मेरे नयनों में अद्भुत प्रकाश का उन्मेष हो गया। मैं उस पद्मकोश के अन्तराल से स्पष्ट देखने लगा - मदनिका एवं रूपमन्जरी प्रिया प्रियतम के विहार के लिये अभिनव सुन्दर शय्या का निर्माण करने जा रही है। सहसा उनकी दृष्टि उस पद्मकोश पर भी पड़ गयी जिसमें मैं आबद्ध था। उन्होंने प्रिया प्रियतम की असीम कृपा से उस पद्मकोश को भी चयन कर लिया और वह कोश भी शय्या के उपकरणभूत सरोरुहों के ढेर में स्थान पा गया। अरी ! सम्पूर्ण निशा मैं उस कोश में आबद्ध हुआ निष्पन्द निर्निमिष नयनों से प्रिया प्रियतम के उस रसमय विहार को कोश के अन्तराल से ही देखता रहा। वाणी में सामर्थ्य नहीं कि उस अप्राकृत दृश्य को व्यक्त करे। ओह अधरों से अधर संलग्न थे। उन अधरों की सुकोमलता, सुन्दरता और पवित्रता अवर्ण्य है। मधु का स्रोत झर रहा था। सहसा युगल दंपति अधर से अधर सटाये ही प्रेम की विलक्षण

महाभाव समाधि में डूब गये। उन दोनों के संलग्न अधरों का रस प्रवाहित हो उठा। उस अधर रस की धार से शय्या में गुम्फित कुवलय पत्रों का सर्वांश सिक्त हो उठा। कोश के बाह्य स्तरों को पार करती रस-कणिका वहाँ आ पहुँची जहाँ मैं स्पन्दन शून्य पड़ा था। मेरा समग्र तन का रोम-रोम, मेरा मन और मेरे प्राण भी उस रस धार से सिक्त होने लगे। और इस प्रकार मैं उस दिव्यतम रस का, उसके अप्रतिम सौरभ का आस्वाद ले सका।" भ्रमरी भी अब पुन: अपनी अनुभूति कहने को आतुर हो उठी -

"मेरे जीवन साथी प्यारे भ्रमर ! क्या तुमने प्रिया प्रियतम के श्री अंगों पर व्यक्त हुए प्रस्वेद का प्राण पाया है ? सुनो ! सौन्दर्य निकेतन वृन्दा-कानन ने एक दिवस अभूतपूर्व श्रृंगार धारण किया था। चारों ओर वसंत का साम्राज्य था। प्रिया प्रियतम वन सौन्दर्य निहारने लगे। प्रियतम वनस्थली के प्रत्येक भाग का परिचय देते हुए प्रिया श्रीराधाकिशोरी का मनोरंजन करते जा रहे थे। सहसा प्रिया श्रान्त हो गयीं। उनके गोरोचन मंडित भाल पर श्रमकण झलमल करने लगे। अपनी प्रिया को श्रमित जान प्रियतम ने पुरोवर्ती कुंज में प्रवेश किया। वहाँ स्वत: ही वृन्दादेवी ने पद्म शय्या निर्माण की हुई थी। प्रियतम ने प्रिया को उस पर विराजित कर दिया और स्वयं उन पर अपने पीताम्बर को व्यजन बना कर हवा झलने लगे। परन्तु अपने प्रियतम की नेह छबि देखकर प्रिया में सात्विक स्वेद विकार हो आया। उनकी रक्त बिन्दु वाली कंचुकी तो स्वेद से चूने लगी। प्रियतम को उस कंचुकी को अपसारित करना पड़ा। प्रियतम प्रिया के भाल, मुख एवं ग्रीवा, वक्षोज, सभी अंगों के स्वेद अपने पीताम्बर से पौंछने लगे। इससे मुख का, कपोलों का, वक्षस्थलका सभी श्रृंगार विलुप्त हो गया। प्रियतम नवीन श्रृंगार धारण करने चले। फिर तो ऐसा विलक्षण खेल हुआ कि प्रिया प्रियतम दोनों के ही श्रीअंगों से स्वेद की धारा बह चली। बस, प्रियतम श्रृंगार चित्र निर्मित करते और और उनकी ही अँगुलियाँ, हथेली, इतना स्वेद बहा देतीं कि चित्र विकृत हो जाते। प्रिया का रोम-रोम तो बस, स्वेद बूँदे ही बहा रहा था। शय्या का कण-कण स्वेद जल से आर्द्र हो उठा। अब तो मैं संयत नही रह सकी। निकुंज के पुष्प गुच्छों से उड़कर शय्या के समीप सरक आयी। स्वेद की बूँदे झर रही थीं प्रत्येक कुवलय पत्र पर। मैं किसी पत्र का आश्रय लेती पर बरबस वह चलती, मैं अवश थी। मेरा रोम-रोम उस स्वेद सौरभ में सन गया। मैं पूरी डूब ही गयी थी, उस मधुरातिमधुर रस प्रवाह में। अहा ! कैसी

वह सुरभि थी कैसा वह रस था – इसे मैं प्रयास करना चाहूँ तो भी वाणी द्वारा समझा नहीं पाऊँगी। इतना ही कह सकती हूँ कि उस समय मेरे लिये तो काल मान स्थिर ही हो गया था। प्रिया प्रियतम के अंक में विराजित कितने कालतक श्रृंगार धारण कराती रहीं – कितने युग बीत गये उस श्रृंगार के पूर्ण होने में, इसका भान करने लायक मेरा स्मरण-तंत्र बचा ही नहीं था। स्वेद के प्रथम स्पर्श से ही मैं सर्वथा उन्मादिनी हो चुकी थी। आज तक उन्मादिनी हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि उस स्वेद जल में मेरा अंग अंग-अंग सन जाने के कारण तुम मुझे देखकर भ्रमित हो जाते हो। पुष्पों का पराग भूल कर मेरा अनुसरण करने लगते हो और मैं इस डर से भाग चलती हूँ कि कहीं उस सौरभ की छाया तुम पर भी न पड़ जाय और तुम भी उन्मादी न हो उठो। मेरी तरह तुम भी अधिकांश बाह्य-ज्ञान शून्य न रहने लगो।"

लो, भ्रमरी का विलक्षण गायन तो सुन लिया, चले देखें ये चकोर-चकोरी क्या रट लगा रहे हैं। इसे भी सुनें तो सही। अहा ! कैसा प्रेम मस्त हो रहा है।

चकोर – "प्राणप्रिये चकोरी ! पूर्व गगन की ओर क्या देख रही हो ? मूढ़े ! अनुपम मंगल-निधान पूर्ण-चन्द्र को प्रकट करने की सामर्थ्य इस पूर्व गगन में रही ही नहीं। परम मंगल निधान पूर्णचन्द्र एक नहीं अब तो युग्म हैं। आश्चर्य – एक नील राका और दूसरा पीत द्युति शशि। ये दोनों कभी विलग होते ही नहीं। और भविष्य में भी अनन्त काल तक इनका क्षणभर के लिये भी विलगत्व न हो, यही मेरी विधाता से दीन विनय है अरी, ये तो पूर्ण स्वच्छन्द हैं। किसी भी दिशा का इन पर नियत बंधन नहीं। जहाँ कहीं से जब जैसी इनकी रूचि होती है ये प्रकट हो जातें हैं। अहा ! अनन्त काल तक अक्षुण्ण कानन की धरा इनसे उद्‌भासित होती रहे, बस कण-कण इनकी प्रीति ज्योत्स्ना में सना रहे। और हम दोनों इन अपूर्व युग्म-चन्द्र ज्योत्स्ना का आजीवन पान करते रहें।"

चकोरी आनन्द से नृत्य करती – "अहा मेरे कर्णपुटों में कैसा शुभ संवाद तुमने ड़ाला। प्रिय चकोर ! अपार हर्ष ! ये दोनों हमारी ही नहीं, सभी की जीवन निधि बने रहें। प्रिया प्रियतम के मुखचन्द्र-युग्म सभी प्राणी-प्राणी के प्राणों में अनन्त आनन्द सिंधु का सृजन करते रहें। और प्रिय तुमने उनकी नख ज्योत्स्ना का आह्लाद पाया है या नही। हो सकता है, मुख चन्द्र ज्योत्स्ना पान निरत तुम्हारा चित्त उधर गया ही न हो। यदि किसी

अभाग्यवश तुम वंचित हो ही गये होओ, अब ऐसी चूक मत करना। एक नहीं, दो नहीं, दस और दस बीस और पुनः बीस इन चालीस चन्द्रों से जो अपरिसीम सुधा का स्रोत प्रसरित होता है, मेरे प्राणधन ! उससे अब भविष्य में कदापि वंचित मत होना।"

अब देखो ! इस संकेत कुंज के चतुर्दिक् न जाने कहाँ-कहाँ से असंख्य पक्षी एकत्रित हो गये हैं। इन्हें विचक्षण शुक दूर-दूर के वनों से आह्वान करके लाया है। ये अपने अपने नियत स्थानों में बैठकर प्रिया-प्रियतम के कुञ्ज बहिर्गमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये अपनी अपनी भिन्न-भिन्न वाणी में प्रिया प्रियतम का मंगल गुणगान कर रहे हैं।

सारिका - "निकुंज महारानी की जय हो ! प्रफुल्लित अरविन्द के समान मुख वाली, सौरभपूर्ण किंजल्क से पूर्ण पद्मकोशों के समान वक्षोजों वाली, सरोरुह जैसे नेत्रों वाली नित्य किशोरी की जय ! अब दक्ष शुक की वाणी सुनो- वह सम्पूर्ण शुक समाज का नेतृत्व कर रहा है। "अहा ! नील तमाल से भी अत्यंत नील जिनकी आभा हैं, जो सदा घनी केसर, कस्तूरी एवं कुंकुमादि के पंक से लिप्त रहते हैं, जो नक्षत्र-मालाओं के समान वज्रमणि हारावली से विभूषित हैं, जिनके वक्षस्थल पर राधारानी का मुख चन्द्र सदा प्रतिबिंबित है - उन व्रज-नव-युवराज की जय हो।

अब मयूरी की उक्ति सुनो - "जय हो ! प्रिया किशोरी रानी के सुन्दर चरण चिन्हों की जय हो ! अहा ! शंख की कैसी विलक्षण शोभा है - वेदी और स्पन्दन, मीन और पर्वत तो चित्त को परम एकाग्र कर अपने में ही लय कर रहे हैं।

लो तांडविक मयूर आह्लाद से नाचता हुआ कहने लगा - अरे मयूरों, शुकगणों, सभी पक्षियों, मेरी बात चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण कर लो। बस विश्व का सम्पूर्ण आनन्द तुम्हारे करतलगत हो उठेगा। प्रिया प्रियतम के सुन्दर चरण चिन्हों में ही रम जाओ। अहा ! पद्म कैसा विकसित हो रहा है। इस ध्वज पर से तो मेरा चित्त हटता ही नहीं। वलय और अंकुश, यह जौ और ऊर्ध्व रेखा, स्वस्तिक, एवं अष्टकोण, इन्द्रचाप एवं त्रिकोण सभी एक से एक मनोहर हैं। अहा ! कलश और अर्ध चन्द्र, अम्बर, मत्स्य और गोपद सभी अतुलनीय शोभामय हैं।

पक्षियों का इस प्रकार कलरव चल ही रहा था। वे अति उत्कण्ठापूर्वक निकुंज द्वार में अपनी दृष्टि जमाये थे और प्रतीक्षा कर रहे थे - कब द्वार

खुलें और प्रिया प्रियतम के उन्हें मनोहारी दर्शन प्राप्त हों। उनकी उत्कण्ठा शनैः शनैः बढ़ती ही जा रही थी।

वीणा वादन एवं जागरण

(यहाँ यह बात पाठकों के सम्मुख पुनः पुनः रखनी है – ये सभी लीलाएँ उच्च कोटि के उन साधकों के लिये हैं जिनका काम-भाव सर्वथा सर्वांश में बीज सहित निरस्त हो चुका है। साथ ही जिनमें भगवान श्रीकृष्ण एवं राधा रानी के प्रति रमण-रमणी बुद्धि सर्वथा नहीं रही है। यहाँ नारी-पुरुष, रमण-रमणी की कल्पना ही नहीं है। महा प्रीतिभाव ही आस्वाद्य तथा आस्वादक, आश्रयालंबन एवं विषयालंबन के रूप में प्रिया प्रियतम बन गया है। ये प्रिया भी क्षण के कोटि भाग में ही प्रियतम हो जाती हैं और प्रियतम प्रिया। अतः इदमित्थं न प्रिया हैं एव न ही प्रियतम। सखियाँ, मञ्जरियाँ, दासियाँ, यही नहीं, बन उपवन, गिरि, हृद, सरोवर, सरिता, नंद, यशोदा, वृषभानु, कीर्तिदा, सभी निद्रा महाभाव में एक विलक्षण प्रेम समाधि में समाकर प्रिया प्रियतम से एक हो जाते हैं। कोई श्रीकृष्ण सिन्धु में डूबकर कृष्णसिन्धु हो जाता है और कोई प्रिया-सिन्धु में डूबकर प्रिया-सिन्धु हो जाता है। यहाँ का स्वप्न भी जागरण है और जागरण भी स्वप्न है। अतः यहाँ लौकिक, प्राकृत आवेश है ही नहीं। नित्य उच्छलित आनन्द लहरा रहा है। यह सब अप्राकृत राज्य के पात्रों में संघटित हो रही लीलाएँ हैं, जो पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबा जैसे लोकोत्तर महासिद्ध सन्त के अन्तःकरण में व्यक्त हुई हैं। शब्द देने की लेखक की तो सर्वथा सामर्थ्य नहीं है। लेखक के महाभाग्य उदय हुये थे कि उसे श्री गुरुदेव की कृपा से इन्हें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। लेखक ने अनचाहे ही अपनी शब्द देने की अयोग्यता के कारण इन लीलाओं का सम्पूर्ण माधुर्य, समग्र सौन्दर्य, और सारी पवित्रता नष्ट कर दी है। परन्तु वह निरुपाय है। हाँ ! यह सत्य है कि इन लीलाओं को पू० गुरुदेव श्री राधा बाबा को उनके काष्ठ मौन के पूर्व ही दिखाया जा चुका है। उनकी अनुमति लेकर ही लेखन कार्य हुआ है। उनकी इस सम्पूर्ण लेखन सामग्री पर दृष्टि पड़ चुकी है। इतना ही नहीं इसमें से बहुत पंक्तियाँ तो उनकी स्वयं की उनके स्वयं के हस्ताक्षर से लिखी गयी हैं। अतः वे मंत्र भी इनमें

सम्मिलित हैं। साथ ही उनकी अनुमति से बारह कृपापात्र व्यक्तिओं को इन्हें देने के लिये स्वीकृति मिल चुकी है। इसीलिये उनकी जीवनी के साथ इन्हें संबद्ध करके पाठकों के लाभ के लिये प्रकाशित की जा रही हैं इसमें जो भी अपराध लेखक द्वारा यदि हुआ है तो वह क्षमा प्रार्थी है)

श्री राधा किशोरी की निद्रा भाव समाधि का अवसान हो चुका है। किन्तु फिर भी वे अपने आपको निद्रित सी बनाकर निस्पन्द लेटी हैं। निद्रितवती, निमीलिताक्षी निज प्रिया की रूप माधुरी का पान प्रियतम अत्यन्त ललक भरी दृष्टि से करने लगे। वे अपनी प्रियतमा का बार-बार आलिंगन करते हैं। कपोलों पर प्रीति चिन्ह अंकित कर देते हैं। किशोरी के नेत्र-सरोजों पर अपने अधर स्थापित करते हैं और कभी उनकी बिखरी कुन्तल राशि को अपने हाथों सहलाते हैं, उन कुन्तलराशि पर भी अपने प्रीति चिन्ह विजड़ित कर देते हैं, उनकी दिव्य गन्ध को बार-बार सूँघते हैं और फिर आनन्द मत्त हुए अपनी प्राणप्रिया को पुन: अपने भुज-पाश में बाँध लेते हैं। उनके नयनों में एवं सर्वांगों में इस प्रकार अत्यधिक आलस्य महाभाव भरा है कि पुन: उनके नयन मुँद जाते हैं और अपनी प्रियतमा के वक्षोजों पर मस्तक रख वे पुन: प्रीति समाधि में निद्रावश शयित हो जाते हैं।

लो ! प्रभात होने के उपरान्त भी प्रिया प्रियतम के पुन: आलस्यवश शयित हो जाने पर प्रिया की बेसर के श्याम रत्न में से मंजुश्यामा उनकी भगिनी प्रकट होती हैं, एवं उनके वाम कपोल स्थित मसिबिन्दु से मंजुलीला प्रकट हो जाती हैं। उसी समय प्रिया प्रियतम दोनों की समग्र गुणावली भी गुण मंजरी के रूप में उनकी कटि किंकणी से व्यक्त हो जाती है। निद्रा काल में ये सब प्रिया-प्रियतम में समाहित थीं, अब उनके जागरण लीला की भूमिका के निर्माण के लिये इन सभी विशिष्ट लीला-पात्रियों की अभिव्यक्ति मूर्तरूप में हो रही है। ये तीनों अपने नूपुरों का शब्द न हो, अत: उनमें रेशमी सुन्दर वस्त्र लपेटे हैं। मंजुलीला एक स्वर्णिम रत्न-जटित अति सुन्दर थाल में तूलिका एवं विलेपन-योग्य परम सौरभयुक्त सुगन्धिद्रव्य कटोरियों में रखकर लायी है। वे प्रिया-प्रियतम की शय्या से सटाकर एक स्वर्ण पीठिका में इस सब सामग्री को रख देती हैं। श्री गुणमंजरीजी नवीन रत्नहार, मुक्तामालाएँ एवं अन्य आभूषण एक रत्नजटित थाल में लिये हैं, जिससे कि निशा विहार के

समय भग्न-आभूषण परिवर्तित किये जा सकें। श्री मंजुश्यामा जी खाली हाथ हैं।

तीनों सखियों की दृष्टि प्रिया प्रियतम एवं इनकी शय्या की ओर जाती है। वे देखती हैं प्रिया-प्रियतम परस्पर आलिंगन में आबद्ध बहिर्ज्ञान शून्य भाव समाधि में लीन हैं। तीनों सखियाँ इस शोभा को देखकर चकित हो जाती हैं। भावोदय के कारण उनके नेत्र मुँदने लगते हैं, परन्तु वे संयमपूर्वक अपने भावजन्य विलयावेश को रोकती हैं।

श्रीमती की वेणी उन्मुक्त है। उसमें गुम्फित मुक्ता और रत्न मालाएँ उनके शीश फूल नामक आभूषण को घेर कर पड़ी हैं। प्रियतम का मुकुट और मयूर पिच्छ कुंड़लों से लिपटा पड़ा है मुकुट और कुंड़लों के पास श्रीकृष्ण की लटों में पिरोये हुए मुक्ता माणिक्य शोभा दे रहे हैं। इनके नीचे प्रियतम के उत्तरीय का आलिंगन किये वनमाला शयित है। इधर प्रियतमा के समीप उनके गले का स्वर्णहार मानो किशोरी के दिव्य स्वर्णकुण्डल और कानों के चक्री नामक आभूषण को प्रणाम करने के उद्देश्य से साष्टांग मुद्रा में लेटा हुआ है।

उसी के पार्श्व में श्रीराधा किशोरी की कंचुकी पड़ी है। उसके पार्श्व में क्रमश: अलकावली को संवरित करने की दो शलाकाएँ, वलय, कंठहार, अंगुलीयक एवं ताराहार, भुजाओं में पहनने के अंगद, रत्नचूड़ियाँ, चरणों में पहनने के नाना प्रकार के मणि जटित नूपुर, मंजीर, और कमर की करधनी और पादांगुलीयक पड़े हैं। इस ओर श्रीकृष्ण के पार्श्व में उनका उत्तरीय शांत पड़ा है। उससे सटकर उनके बाहुओं के वलय, कंकण, अंगुलीयकों के साथ अनेक रत्नहार, कटि-किंकणी, पैरों के अंगुलीयकों से उलझा पीताम्बर अपनी शोभा विस्तार कर रहा है।

प्रिया-प्रियतम ऐसी शोभा है मानो रूप के दो पुंज परस्पर मिले विराज रहे हैं। निशा-विहार के चिन्हों की ओर मंजुश्यामा बहिन का ध्यान चला जाता है। वे उन्हें कस्तूरी पंक से छिपा देती हैं। अधरों पर नेत्रों के कज्जल की रेखा है वे उसे मुसकाकर रक्तिम अंगराग से छुपा देती हैं। श्री गुणमंजरी मंजुश्यामा जी के पार्श्व में शान्त स्थित रानी का अप्रतिम रूप निहारती भाव में मूक भाषा में बोल उठती हैं - हे सुन्दरी ! विधाता ने अहा ! जब तेरी यह विलक्षण गरिमामयी देह यष्टि का निर्माण किया तो अपनी कला की इति ही कर दी है। कुछ भी सौन्दर्य कहीं भी बचा कर नहीं रखा। सम्पूर्ण सौन्दर्य को

तेरे अंगों में ही उड़ेल दिया है। अरी सखि ! इस शोभा राशि का दर्शन कर लेने पर सम्पूर्ण भुवन एवं चतुर्दश लोक नीरस लगते हैं। तेरे चरणों के तालुप्रदेश की लालिमा पर ऐसा लगता है जैसे रति, कमला, और शची तीनों को बलिहार कर दूँ। कुवलय-दलों पर विराजित तेरे रोम-रोम से सहज माधुरी की जो राशि प्रस्फुटित हो रही है, उसका पान कर मेरे नयन छलकने लगे हैं।

प्रिया प्रियतम का श्रृंगार यथास्थान उचित प्रकार धारण करवा देने पर गुणमंजरी, मंजुलीला एवं मंजुश्यामा निष्पंद बिना कोई ध्वनि किये कुंज से बाहर आ जाती हैं। इधर वृन्दा के विनय करने पर ललिता सुन्दरी कुंज प्रकोष्ठ के बाहर वीणा वादन करने लगती हैं। भैरवी की कोमल स्वर लहरी वीणा की मधुर झंकार के साथ गूंजने लगती है। कोमल गांधार और कोमल निषाद की झंकृति सातों स्वरों पर अपना आधिपत्य जमा बैठी हैं। भैरवी रागिनी मूर्तिमती होकर वीणा पर आसीन हो गयी हों, इस प्रकार वीणा श्रीललिता सखी की कोमल अँगुलियों के संकेत पर तान भर रही हैं।

लो प्रिया-प्रियतम उस संगीत स्वरलहरी में सखियों द्वारा जगाये जाने का त्वरापूर्ण संकेत समझ कर सरस मुद्रा में जागने का उपक्रम करने लगते हैं। वीणा की स्वर लहरी इतनी सरस है कि वह प्रिया-प्रियतम को उसका रस लेने को बाध्य कर दे रही है। दंपति श्रीतार वीणा का रस लेने लगे। जब भी बंदिश में सम आता है, प्रिया प्रियतम दोनों की गरदन अनुमोदन में हिल जाती है। जो उनके रस में मस्त होने का लक्षण है।

सहसा प्रियतम की दृष्टि प्रिया के मुखारविन्द की ओर केन्द्रित हो जाती है। वे किञ्चित मुसकाते हुए अलकावलि मण्डित मुख के सौन्दर्य का पान करने लग जाते हैं।

रानी अपनी मृणाल सी भुजाओं को उठाकर अँगडाई लेती हुई आलस्य का निवारण करती हैं। उस समय उनके अधरों पर विराजित स्मिति की, अर्धमुक्त कबरी की, विमर्दित कुसुम माला की, अस्तव्यस्त हुए रत्न हारों की, आलस्य भरे विघूर्णित नयनों की छबि का दर्शन करते-करते व्रजकुल चन्द्र आनन्द से उन्मत्त हो उठते हैं।

रानी यद्यपि पूरी जाग्रत हैं परन्तु वे रति-श्रम से श्रान्त होने के कारण था आलस्य के आवेश से अपने तमाल-नील प्रियतम से पुनः लिपट जाती हैं। से चंचल विद्युल्लता नवीन मेघ में स्थिर हुई शोभा पा रही हो- श्री किशोरी

मंजरी चन्दन पात्र ग्रहण करती हैं। श्री विशाखा जी रति मंजरी को चित्र विचित्र रत्नों से जड़ा स्वर्ण रचित जल पात्र उठाकर देती हैं।

सखियाँ प्रिया-प्रियतम के रति-चिन्ह चिन्हित अंगों का दर्शन कर अपने को परम कृतकृत्य एवं कृतार्थ अनुभव करती हैं। उनके अधरों पर अपने प्रियतम के दशन चिन्ह, कलेवर पर नख चिन्ह, उनका विलास जन्य अलस भाव, वेष-विन्यास की अस्त व्यस्तता, विगलित कुंड़लों की आभा, विच्छिन्न मणि-मुक्ताहारों की शोभा, कंठ प्रदेश में विमर्दित वन माला का सौन्दर्य - निहार-निहार कर सभी के नेत्र आह्लाद में मुग्ध हो रहे हैं।

श्री तुंगविद्याजी स्वर्ण दंड़ी युक्त व्यजन धारण कर लेती हैं और शनैः शनैः प्रिया प्रियतम पर व्यजन करने लगती हैं। श्री मंजुश्यामा स्वर्ण पिंजर में सारिका को समाविष्ट करती हैं और द्वार बन्दकर उसे अपने हाथों में सम्हाल लेती हैं।

सूर्योदय होने में अभी विलम्ब है। वन श्रेणी पर उषा कालीन सौन्दर्य छाया हुआ है। निकुंज के इधर-उधर हरिणी चौकड़ी भर रहे हैं। कदम्ब पर बैठी कोकिलें कुहू-कुहू की तान अलाप रही हैं। मालती-जुही आदि लताएँ नाना प्रकार के वृक्षों को आच्छादित कर मह-मह महक रहीं हैं। पुष्प विकसित हैं, उन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

इतने में मुसकाती हुई वृन्दादेवी भी समुपस्थित हो जाती हैं। उनका निवेदन है कि आज उन्होंने वनवासिनी सखियों के सहयोग से अद्भुत वन श्रृंगार किया है, अतः अपनी दृष्टि प्रिया प्रियतम अवश्य ही अब शीघ्र उस पर ड़ालें।

रति मंजरी से लवंग जल की झारी लेकर प्रिया प्रियतम को गण्डूष (कुल्ला) कराने को उद्यत होती हैं। विमला कुल्ला करने का प्रक्षालन पात्र जो पास ही रखा है - उसे हाथ में उठा लेती हैं। पहले प्रिया एवं पश्चात प्रियतम पहले अपने नेत्र धोते हैं और तब जल-गण्डूष करते हैं। शीतल जल से भरा पान-पात्र चित्रा रानी के हाथों में देती हैं - रानी पात्र को प्रियतम के होठों से लगा देती हैं। प्रियतम धीरे-धीरे प्रिया के मुख पर दृष्टि जमाये आधा गिलास जल पी लेते हैं, फिर पात्र को प्रिया के होठों में लगा देते हैं। प्रिया लज्जावश पीना नहीं चाहतीं प्रियतम बायें हाथ से उनका इतने प्रेमाग्रह से कन्धा स्पर्श करते हैं एवं वह पात्र प्रिया के अधरों से सटाये ही रखते हैं, अन्ततः प्रिया कुछ घूँट जल धीरे-धीरे पी लेती हैं। फिर सखियाँ दोनों का

श्रृंगार नवीन वस्त्राभूषणों से करती हैं जो ठीक पुराने वस्त्रों एवं आभूषणों की हू-बहू अनुकृति ही हैं।

अनेक सखियाँ श्याम सुन्दर प्रियतम की शय्या पर, एवं अनेक नीचे कालीन पर बैठी हैं, कुछ उन्हें घेरे खड़ी हैं। उन सबके मध्य प्रिया प्रियतम की अनिर्वचनीय शोभा समस्त निकुंज को आनन्द से सराबोर कर रही है। प्रियतम की अंगकान्ति नीलमणि के समान दमक रही है। प्रिया प्रियतम को गुणमंजरी चरण प्रदेश तक लम्बी अत्यन्त सुन्दर शतरंगी पुष्पों से रचित अनन्त सौरभमयी माला धारण कराती हैं। तत्पश्चात् रूपमंजरी ललिता के आदेश से प्रिया प्रियतम को केसर-कर्पूर कुंकुम सिक्त चन्दन चर्चित करती हैं। सुन्दर वनमाला से विभूषित चन्दन से चर्चित पीतवसन धारण किये प्रियतम सुन्दर गोपरामाओं के साथ पुनः केलि-परायण हो उठते हैं। उनके कंपित मणि-कुण्डल एवं उनके उन कुण्डलों से दमकते उनके कपोल युगल, उनकी दंत-पंक्ति, सुकोमल गुलाबी अधर सब शोभा परम निराली फब रही है।

सखियाँ किशोरी से विनोद हास करती हैं। रानी के कपोल आनन्द से विकसित हो उठते हैं। किशोरी रानी के कपोल इतने निर्मल एवं ज्योतिर्मय हैं कि उन कपोलों में प्रिय छबि का प्रतिबिंब पड़ रहा है या नहीं, सखियाँ बार बार अनुसंधान करती हैं। प्रिया के आनन सरोज पर से प्रियतम की लुब्ध दृष्टि हटती ही नहीं। सखियों के आनन्द का पार नहीं है। उनके अंगों में सात्विक भाव उदय हो रहे हैं। कोई स्वेद से लथपथ हो रही है। कोई अट्टाहस कर रही है। किसी को कम्प हो रहा है। वह इस प्रकार काँप रही है जैसे तूफान से वृक्ष काँप रहे हों। किसी को अश्रुप्रवाह अनवरत हो रहा है कोई लज्जा से लाल हो रही है।

श्री मंजुलीला मंजरी सुगन्धित ताम्बूल अर्पण करती हैं। वे प्रिया के मुख से आधा ताम्बूल चर्वित कराके आधा प्रियतम को दे देती हैं। प्रियतम मंजुलीला को भुजा में भर लेना चाहते हैं पर वे पीछे हट जाती हैं।

सखी मंडली सहित प्रिया प्रियतम निकुंज के बाहर आ जाते हैं। बाहर एक विलक्षण चन्द्रातप तना है। यह ऐसी सुभग चन्द्रकान्त मणियों से जड़ा है जो निशापर्यन्त शीतल ज्योत्स्ना छिटकाती रहती है। पुष्पों से लदी सघन लताएँ बरामदे को चारों दिशाओं से घेरे शोभित हैं। उस चन्द्रातप से होते हुए सभी बाहर उपवन में आ जाते हैं। मन्द समीर के झोंकों से हिलती लताएँ मानो दम्पति से प्रार्थना करती हैं -- हमारे जीवनाधार ! निशापर्यन्त तुम्हें

हृदय में छुपाये बैठी रही अब जा रहे हो .... जाओ ... क्या ऐसा विधान संभव है कि तुम्हें एक पल भी अपने अंक से विलग न करूँ । ना ... ना.. मत जाओ।

आगे उपवन के प्रांगण के चारों ओर बड़ी-बड़ी गुलाब की क्यारियाँ हैं। परन्तु इनमें विलक्षणता यह है कि काँटे सर्वथा नहीं है। बड़े-बड़े सुगन्धित स्थल पद्मों के समान गुलाब खिले हैं।

इसी समय वृन्दा देवी के आदेश से शुभा सारिका बोल उठी -- "हे कमल नेत्रे प्रिये ! अभिवादन ! तुम्हारे आवास के सभी गुरुजन जाग्रत हो उठे हैं। उन्होंने गोदोहन भी समाप्त कर लिया है। गोशालाओं दुग्ध के असंख्य भाण्ड़ उठवाकर गोपगण गृहों की ओर प्रस्थान कर चुके हैं, अतः शीघ्रता पूर्वक शयन मन्दिर में जाकर विश्राम करो।"

हे मुग्धे ! तारागणों के सहित चन्द्र गगनतल में अदृश्य होने लगा। राजपथ जन समूह से पूर्ण हो, उसके पूर्व ही कीड़ा कौतुक का परित्याग कर कुंज से गोष्ठ की ओर प्रस्थान करो।

हे सरले ! तुम्हारे गुरुजन वास्तुपूजन की सभी सामग्री सम्पादित कर चुके हैं, वे तुम्हें उठाने शयन मन्दिर में पहुँचने वाले हैं, अतः शीघ्रता करो।

सारिका के वचन सुनकर रानी अतिशय व्यथित हो उठी। प्रियतम संग विच्छेद से दुःखिता वे प्रियतम के पीताम्बर में मुख ढ़ाँप कर वक्षस्थल से लिपट जाती हैं।

प्रियतम भी भावी विरह की व्यथा से विषादित हुए प्रिया का बार-बार गाढ़ालिंगन करते हैं। वे एक दूसरे के गले में बाँहें डाल कुछ क्षण एक दूसरे के मुखराविन्दों को अतृप्त नयनों से देखते हैं फिर वियोगाशंका से गंभीर श्वास लेते हैं। दोनों के मुख से स्वाभाविक उल्लास धूमिल हो जाता है। सखियाँ भी उदासीन हो जाती हैं।

ललिता रानी को प्रसन्न करने के लिये सम्बोधित करती हैं - री ! तुझे विस्मरण तो नहीं हुआ - आज प्रतिदिन की अपेक्षा शीघ्र सूर्य-पूजा के लिये जाना हैं। सूर्य व्रत आज से ही प्रारंभ हो रहा है।

ललिता की यह उक्ति सुनकर प्रिया एवं प्रियतम दोनों ही पुनर्मिलन की कल्पना से आनन्द में भर जाते हैं। दोनों के मुख पर उल्लास छा जाता है। सखियाँ भी उल्लसित हो जाती हैं। प्रियतम अतिशय कृतज्ञता मृदुलता भरी दृष्टि से ललिता की ओर निहारते हैं।

श्री मंजुलीला ने प्रिया का ताटंक जो शय्या में ही प्रिया भूल गयीं थीं, उठा लिया। उन्होंने उसे अपने अंचल में बाँध लिया। श्री मंजुलीला जी ने प्रिया प्रियतम का मुख शुष्क देखकर उन्हें ताम्बूल पात्र से ताम्बूल दिये। श्री गुणमंजरी प्रिया का (पीकदान) ताम्बूल विसर्जन पात्र उनके मुख के आगे कर देती हैं। प्रिया प्रियतम उस में मुख का चर्वित ताम्बूल शेष उगल देते हैं। उस (पीकदानी) ताम्बूल विसर्जन पात्र में बहुत से निशा काल के विसर्जित किये हुए ताम्बूल चर्वित शेष तथा अर्ध चर्वित ताम्बूल खण्ड पड़े हुए हैं, उन्हें श्री गुण मञ्जरी जी सब सखियों में वितरण करती हैं। फिर वे झारी से जल लेकर उस पात्र को स्वच्छ कर देती हैं। जैसे ही जल धोकर वे उसे फेंकती है उस पर शुक सारिकादि वृक्षों पर बैठे पक्षी ताम्बूल अवशिष्ट लेने आ जाते हैं। उस धोवन में प्रिया प्रियतम के मुख की ऐसी सुवास भरी होती है कि पुष्प मकरन्द को त्याग कर भ्रमर दल उस पर मँड़राने लगता है।

गुलाब की क्यारियों से होते हुए सखी मंडली सहित श्री प्रिया-प्रियतम कदली वन में प्रवेश करते हैं। इसके पश्चात वे अत्यंत सुगन्धित पुष्पों से भरे उपवनों मे से होते हुए विश्राम कुंज के मुख्य द्वार पर पहुँच जाते है। मुख्य द्वार से आगे बहुत ही मनोहर घाट हैं और घाट पर यमुना का निर्मल प्रवाह प्रवाहित हो रहा हैं घाट के ऊपर एक विशाल वट वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे खड़े होकर दम्पति यमुना की शोभा निहारने लगते हैं।

यमुना-संतरण

तपन तनया तुमि ; तेई कादम्बिनी
पाले तोमा शैल नाथ कांचन भवने।
जन्म तब राजकुले (सौरभ जनमे फूले)
राधिका रे लज्जा तुमि कर कि कारणे ?
तुमि कि जानो ना सेउ राजार नन्दिनी ?

प्रियतम नील सुन्दर - "प्रिये देखो, यमुना की क्या ही मनोहर शोभा है। दूर-दूर तक तट-प्रदेश चित्र-विचित्र रत्नों से जटित है। .उन रत्नों की उज्ज्वल कान्ति से दिव्य प्रकाश चारों ओर निखर रहा हैं। देखो तट के निकट अनन्त पक्षियों के समूह कलरव कर रहे हैं। जल में चित्र-विचित्र पक्षी

हंस-सारसादि के अगणित समूह एवं रंग-बिरंगी मछलियाँ, सभी आनन्द मत्त हैं। फिर विलक्षण रंगों के कमलों की शोभा तो सर्वोपरि है। इन श्वेत, पीत, रक्त, नील कमलों से लिपटीं कमलिनियाँ और इन सभी पर मदमत्त हो गुंजार करते मधुपों के अगणित-दल और इनके मध्य विहार करते हंस-हंसिनियों के युगल जोड़े सभी कैसे मनोहरी हैं। प्रिये ! ये प्रस्फुटित कमल ही जैसे यमुना सखी का मुख सरोज हों, तट प्रदेश में रत्नों और मणियों से विजड़ित लघु-लघु पर्वत ही मानो इसका मुकुट हो, शोभावली नीलोत्पल ही इसके दीर्घ कृष्ण नयन हों, चकवाक् दम्पति का दल ही इसके स्तन मंडल हों, देखो हंसों की उदार गति ही इसका मनहरण गमन आर युगल तट ही इसके दोनों नितम्ब हों और रस स्वरूप नीला जल ही जो प्रवाहित हो रहा वही इसका नील निचोल परिधान है, रंग-बिरंगी मछलियाँ इसकी मेखला हैं ऐसी शोभामयी तरणि तनया तेरा स्वागत कर रही है। आओ, प्रिये, नौकाओं में संतरण करें। प्रियतम के ऐसा कहते ही --

यमुना की लहरियों में रंग-बिरंगे रंगों से सजी रत्न जटित नौकाएँ, कोई मयूर की आकृति की, कोई श्वेत हंसाकृति की, कोई प्रस्फुटित कमल के समान गोलाकार आकृति की, कोई अविकसित पद्म-कोश के समान ऊर्ध्व आकार वाली, कोई मीनाकृति, कोई वृहद् तिमिंगलाकृति वाली नाच उठी । सभी नौकाएँ तट पर स्वभवतः ही आ लगीं । गोपबालाएँ जिसको जो रुचिकर लगी उन नौकाओं पर आरुढ़ हो गयीं ।

महती आश्चर्य इस बात का था प्रत्येक नौका में आरुढ़ गोपी को यही अनुभव हो रहा था कि प्रिया-प्रियतम उसी की नौका में आरुढ़ हैं एवं वह प्रिया से सटकर उसके पार्श्व में ही आसीन है ।

अत्यंत सुन्दर प्रस्फुटित कमल के समान बर्त्तुलाकार नौका पर प्रिया-प्रियतम आरुढ़ हुए । श्रीगुणमंजरी एवं मंजुलीला मंजरी नौका संचालन करने लगीं । प्रिया-प्रियतम की नौका को घेर कर सभी सखियों की नौकाएँ चल रही थीं ।

धीरे-धीरे यमुना की लहरियों में सभी नौकाएँ बढ़ने लगीं । यमुना में कहीं भी पंक हुए बिना ही सुन्दर कमल खिले हैं । प्रियतम-प्रिया को प्रसन्न करने के लिये यमुना में खिले कमल वनों की ओर ही नौका का रुख करने का संकेत, वाहक सखियों को करते हैं और खिले सुन्दर कमलदलों को

तोड़कर किसी कमल को उनकी वेणी में खौंस देते है किसी सुन्दर नीलकमल को प्रिया के हाथों में सौंप देते हैं।

प्रिया-प्रियतम की नौका को घेरकर संपूर्ण जल पक्षी अपने अंगों की मनोरम शोभा से प्रिया-प्रियतम के नेत्रों को, अपनी सुमधुर काकली से उनके कर्णपुटों को सुख देते उनकी नौका के आस-पास जल में संतरण करने लगते हैं। श्रीगुणमंजरी प्रिया को बहुत सी द्राक्षा, बादाम, काजू, पिश्तादि सूखा मेवा देती हैं जिसे प्रिया-प्रियतम नाव के साथ चलते पक्षियों को अपने हाथों खिला रहे हैं । प्रिया-प्रियतम की अंगगंध से लुब्ध भ्रमर अपने प्रिय पद्मों को छोड़कर दल बनाकर प्रिया-प्रियतम की अंगसौरभ से लुब्ध हुए उनकी परिक्रमा करते गुंजार कर रहे हैं । उनकी गुंजार से सब वातावरण मुखरित हो रहा है।

हंस-हंसिनियों का विहार देखकर प्रेमावेश के कारण प्रिया, प्रियतम के वक्षस्थल से लिपट जाती हैं । कभी कमल दलों का सौन्दर्य देखकर उनका मुख निर्निमिष नेत्रों से देखने लगतीं है । फिर गोष्ठगमन जनित वियोग की आशंका में इस प्रकार काँप जाती हैं जैसे वर्षा ऋतु में वज्रपात से वन की तरुराशि काँप जाती हो ?

प्रियतम प्रिया के भावी विरहदु:ख को यथाशक्य भुलाने का प्रयास करते हैं परन्तु जल में चकवाक-चकवाकी को परस्पर मिलते देख उनका मन अधीरता की सीमा लाँघ जाता है । वे दोनो परस्पर अलिंगित हो जाते है ।

शनै: शनै: प्रिया प्रियतम एवं सखियों की नौकाएँ यमुना के बालुका मय तट पर आ लगती हैं ।

प्रिया प्रियतम अब एक दूसरे से पृथक होकर गोष्ठ गमन करेंगे, इसलिये उनका एक बार एकान्त मिलन हो जाय- इस इच्छा से सभी सखियाँ प्रिया प्रियतम से कुछ दूरी पर वृक्षों की ओट में स्थित हो जाती हैं । प्रिया प्रियतम भावी विरह के दुख को न सह सकने के कारण एक दूसरे के प्रगाढ़ आलिंगन में लिपट जाते हैं ।

उनकी प्रेमालिंगन जनित प्रगाढ़ भाव-स्थिति ऐसी हो जाती है कि न उन्हें बाह्यज्ञान रहता है एवं न ही अपने आपका ।

परन्तु आश्चर्य काल भी उनके भाव का अनुसरण करता थम जाता है,वह गतिशील तभी होता है जब श्री रूपमंजरी उनका हाथ धारण किये उन्हें गुप्त

पथ से वृषभानु महल में ले जाती हैं तथा प्रियतम शंकित चित्त हुए बार-बार मुड़ मुड़कर प्रियतमा की ओर देखते नन्दभवन की ओर चल पड़ते हैं ।

वृषभानु - भवन गमन, शयन एवं स्नान

पूरब की शिखरावलि मंडित्त गिरि था सीमा रचता प्रियतम ।
कानन से जुड़ी प्रतीची में प्रसरित नीली सरिता प्रियतम ।
सुविशाल राज-पथ उत्तर में द्रुम जालों से छाया प्रियतम ।
चलकर कोसों तक छू लेता, उस शैल रत्नमय को प्रियतम ।

लो ! अब सूर्योदय होने में अधिक विलम्ब नहीं है । सूर्यदेव ने अपनी प्रथम रश्मियों से वृन्दावनेश्वरी के चरणों में पाद्य समर्पित कराया । भानु-किशोरी अपने वृषभानुपुर प्रासाद में सुगुप्त पथ से अति शीघ्रतापूर्वक पहुँचने की त्वरा में तीव्र गमन कर रही हैं । सूर्योदय के पूर्व उन्हें अपने शयनकक्ष में पहुँच ही जाना है । तीव्र गति से उनके मुक्ताहार और आभूषणों के रत्न बिखर जाते हैं । श्री मंजुलीला, गुणमंजरी के साथ उन खण्डित मणिमालाओं को उठाकर आँचल में बाँध लेती हैं। रानी के दाहिनी ओर मंजुश्यामा उनकी बहिन चल रही हैं और बाम भाग में श्रीललिता रानी हैं । विशाखादि अन्य सखियाँ पीछे अनुगमन कर रही हैं । श्री रतिमंजरी ताम्बूलपात्र एवं रसमंजरी जल-पात्र लिये चल रही हैं । श्री मंजुलीला पीकदानी से रानी एवं प्रियतम के चर्वित ताम्बूल खण्ड अपने साथ एक पान पात्र में ले आयी हैं जिसे चलते-चलते ही वे सखियों में वितरित कर दे रही हैं। उस पर ललिता प्रसन्न होकर उनकी पीठ थपथपाती हैं ।

सभी सखियों एवं प्रिया की उस समय कैसी विलक्षण स्थिति है कोई उसे क्या कहकर वर्णन करे ।

हो रहे चित्र अंकित हृत्पटपर विगत निशा के थे प्रियतम !
कैसे कितने सुन्दर वे हैं किस भाँति कहूँ तुमसे प्रियतम !
अविराम भावना हृत्तल की विगलित हो थी आती प्रियतम !
सबका मन डूबा था नीली आनन्द हिलोरों में प्रियतम !!

यद्यपि रानी तीव्र गति से पथ में संचलन कर रही हैं, परन्तु विगत निशा का प्रियतम का नेह दान उनके हृत्पटल पर जीवंत स्मृति चित्र खड़े कर दे रहा है । कभी उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अभी तक प्रियतम के पास नाव में ही बैठी हैं । परन्तु दूसरे ही क्षण ऐसा अनुभव होता है कि वे तो हैं ही नहीं, थी भी नहीं, और वे होएँगी भी नहीं । मात्र प्रियतम ही प्रियतम ही तो सर्वत्र विलस रहे हैं ।

दे रहे प्रीति संकेत दृगों को नचा-नचा करके प्रियतम !
ढ़ल जाती बहित्त साँवरी पर रहता न होश तन का प्रियतम !!

ललिता रानी को किसी प्रकार साम दाम दंड भेद से पथ में संचलन करातीं हैं। वे उन्हें सूर्यपूजन में शीघ्र चलना है - कहकर उत्साहित करने की चेष्टा करती हैं। प्रिया फिर शीघ्रता से पथ चालन करती हैं। परन्तु कुछ ही क्षण नहीं बीतते पुन: भावाविष्ट हुई जोर-जोर से बोलने लगती है - "अरी ललिते ! ओ रूप !! अरी मंजू !!! मेरी प्राण प्रिया राधा कहाँ गयी ? उसे अन्वेषण करो । वह किसी लता-वल्लरी में मुझे ढूँढती पथ तो विस्मृत नहीं कर गयी । हाय ! अब मैं उसे कैसे एवं कहाँ पाऊँगा ? उसके बिना तो मेरे प्राण ही संकट में हो गये हैं ।"

सखियाँ पुन: रानी को संवरित करने की चेष्टा करती हैं । इस प्रकार किसी तरह पथ पूरा होता है ।

दूरी संकुचित अहो ! पथ की हो गयी सत्य सहसा प्रियतम !
लाड़िली आदि सब जा पहुँची आधी घटिका में ही प्रियतम !

वैसे प्राकृत धरातल पर बरसाने और संकेत के मध्य कई मील की दूरी है, वह कैसे आधी घडी अर्थात् बारह मिनट में ही तय हो जाती है यह आश्चर्य लग सकता है। वहाँ लीलाराज्य की प्रत्येक वस्तु चिन्मय है । वहाँ का देश, काल एवं वस्तुएँ सभी लीला की सम्पन्नता के लिये विस्तृत और संकुचित हो जाती हैं, वे यथावसर बृहत् भी बन जाती हैं और तब तत्क्षण ही वहीं लीला के अनुसार लघु भी हो जाती हैं । जड़-चेतनात्मक गुण-दोषमयी सुख-दु:ख पूर्ण जन्म मरणधर्मा हमारी जो ब्राह्मी सृष्टि है, इस सृष्टि के नियम

उस नित्य चिन्मयी लीलास्थली पर सर्वथा लागू नहीं होते । दिव्य लीलाराज्य के देश, काल, पात्र सभी नियमातीत हैं ।

यह महाराज वृषभानु का भवन है । विधाता का कौशल यहाँ कोई अर्थ ही नहीं रखता । सभी कुछ संविन्मय, सभी कुछ संधिनी शक्ति की परिणति ही है यहाँ । दिव्य रत्नों से बनी चतुः शालाएँ, चंदनादि अत्यन्त मूल्यवान काष्ठों पर जटित स्वर्ण और रजत तथा उसके ऊपर विविध बहुमूल्य रत्नों से जटित सम्पूर्ण कपाट । स्तंभ ऐसे हैं मानो मणि पर्वतों को काट-काट कर उनकी कलापूर्ण रचना की हो ।

स्वर्ण के झलमलाते कलश, दिव्य वेदियाँ, मुक्ता और प्रवाल के चूर्णों से निर्मित प्रांगण, कहीं स्वर्ण के, कहीं रजत के और कहीं स्फटिक के प्राकार वृषभानु पुरी जगमग-जगमग कर रही है ।

निकुंज से आकर रानी अपने महल में एक सुन्दर शय्या में लेटी हैं । रानी का मस्तक दक्षिण की तरफ है और चरण उत्तर की ओर हैं । एक नीली श्यामवर्ण स्वर्ण खचित चादर से रानी के मुख एवं ग्रीवा को छोड़कर सभी अंग आवृत हैं । देखने से प्रतीत यही होता है कि वे प्रगाढ़ निद्रा में हैं। उनके दीर्घ कमल के समान काजल से कृष्ण नयन आधे मुँदे है । अध मुँदे होने से कुछ श्वेत अंश की झलक हो रही है । परन्तु वस्तुतः वे अतिशय भावाविष्ट हैं, परन्तु जाग्रत हैं । श्री मंजुश्यामा श्रीप्रिया के चरणों के पास उनकी शय्या पर ही बैठी हैं । उनके श्यामल चरण नीचे लटक रहे हैं। उनके लाल-लाल तलुए श्यामवर्ण पैरों में बहुत ही शोभा दे रहे हैं । उनके नयन प्रेमवश छलक रहे हैं और दृष्टि प्रियामुख की ओर एकटक लगी है।

अब तो ब्राह्म मुहूर्त्त व्यतीत हो गया है । प्रातः हो गया है । मंजुलीला गुणमंजरी को पानदान एवं पीकदानी माँजकर लाने को कहती हैं । रति एवं अशोक रात्रि के भोजन पात्रों को स्वच्छ कर रही हैं । केलि एवं रसमंजरी मणिमुक्ताओं को यथा स्थान पर आभूषणों में विजड़ित कर रही हैं । श्री प्रिया के निशाकाल के वस्त्रों को धोकर श्यामला सुखा रही है।

रूपमंजरी उत्तम रीति से चन्दन घिस रही हैं और केसर पीस रही हैं । वृषभानु बाबा एवं कीर्त्तिदा मैया जग गये हैं । मैया आकर रानी की शयित शोभा देखकर पुनः गृहकार्य में लग गयी हैं । वे मंजुश्यामा के भगिनी प्रेम पर मुग्ध हैं । उसे हृदय से लगाती हैं । उसका मस्तक सूंघती हैं । सभी सखियाँ पारी-पारी से मैया को प्रणाम करती हैं और उनसे आशीर्वाद लेती हैं ।

ललिता को बुलाकर मैयारानी को उठाने का संकेत करती हैं जिससे समय पर नन्दरानी के बुलाने पर पाक रचनार्थ वे जा सकें । ललिता मैया को महल से उनके महल तक छोड़ने जाती हैं ।

स्नान के लिये स्नानगृह में मंजुलीला एक स्वर्ण पीठिका रख देती हैं । गुण मंजरी सुगन्धित मंजन दाँत माँजने के लिये रख देती हैं । और अब जल की झारी लेकर गण्डूषार्थ जल प्रदान करने के लिये केलिमंजरी खड़ी हो जाती हैं ।

लो, अब तो सुगंधा नापित कन्या अपनी सहचरी नलिनी के साथ आ गयी। वे अपने साथ ही उबटन निर्मित करके लायी हैं, मंजुलीला उन्हें चतुःसम (चन्दन, अगुरु, केसर और कुंकुम का समभाग में मिश्रण) प्रदान करती हैं । मंजुलीला सुगन्धा से अतिशय प्रेमपूर्वक मिलती हैं और गले लगकर उन्हें एकान्त में ले जाकर अति उत्कृष्ट एवं परम सौम्य उत्कृष्ट सुगन्धित तैल देती हैं और बार-बार समझाती हैं कि रानी के परम सुकुमार अंगों में तैल मर्दन करते समय तनिक भी बल प्रयोग नहीं करे । उनके अंगों का उबटन से सम्मार्जन भी अति सुकोमल संस्पर्श से करे ।

सुगन्धा मंजुलीला का निर्देश सुनकर मुसकाने लगती है। मंजुलीला जब ढ़ीठता से मुसकाने का कारण पूछती हैं तो वह उनके गले से चिपट जाती है एवं हँसकर कहती है - इन सभी कार्यों की शिक्षा जो मुझे परंपरा से मिली है, वह अन्यत्र से भला कैसे मिलेगी ? उसके परिवार ने तो रानी सुखदा एवं माता कीर्त्तिदा जब नई नवेली विवाह करके आयी थीं तभी से उन सबकी मर्दन एवं उबटन सेवा की है । रानी के सौकुमार्य के ध्यान का पाठ उसे अन्य कोई क्या पढ़ायेगा ? यह तो उसका पारम्परिक कार्य है ? सुगन्धा की बात सुनकर मंजुलीला लजा जाती हैं ।

रानी की विलक्षण शोभा है। सारिका अत्यन्त सुरीले कंठ से गान करने लगती है । उसके दोनों प्रयोजन हैं- रानी सो रही हों तो उठ जावें और यदि भावाविष्ट हों तो आत्मकेन्द्रित हो जावें।

सारिका - "कुँआरि राधिका तुम सकल सौभाग्य की सीमा,
वदन पर कोटि चन्द्र वारौं .....

सारिका गायन का वाक्य पूरा कर ही पाती है कि सहसा एक शुक उड़ता हुआ आता है - और सारिका से विवाद कर उठता है । वह दूर से सारिका

की वाणी सुनता है - "वदन पर कोटि कृष्ण वारौं ....." उसे इसी पर आपत्ति है । वह सारी से झगड़ता है कि क्या हमारे सखा श्रीकृष्ण इतने नगण्य और तुच्छ हैं कि तू इस कृष्णाराधिका के मुख पर हमारे करोड़ों सखा न्यौंछावर कर रही है ?

सारिका डाँटकर कहती है - "मूर्ख ! झूठी कलह करता है, मैंने "वदन पर कोटि चन्द्र वारौं..... कहा है ।"

परन्तु शुक अपनी बात पर अडिग है - वह एक मयूर को साक्षी करके कहता है इससे पूछ इसने भी सुना है। मयूर अपनी नई राग आलापता है - वह कहता है कि "चन्द्र तो श्रीकृष्ण के मुकुट में पिच्छ के रूप में ही रहता है अतः चन्द्र का अर्थ कृष्णचन्द्र ही होता है ।" नभ स्थित चन्द्र तो ब्रज में उपमा का पात्र ही नहीं है - इतने में पास में ही स्थित पुंस कोकिल बोल उठता है :-"इस दुर्बुद्धि सारिका का मंतव्य कोटि कृष्णचन्द्र वारौं यही रहा है।"

सारिका रानी की अति प्रीतिपात्रा है - वह उनकी कलह की परवाह नहीं करती हुई दूसरी पंक्ति गाना चाहती है, परन्तु शुक उसे गाने नहीं देता। बीच में ही चीख उठता है ।

रानी उठ जाती हैं । ललिता उनके पास आ जाती हैं । अतिशय प्यार से पूछती हैं - निद्रा आयी ? रानी मन्द मुसकाकर निषेध कर देती हैं ।

रानी के जगकर उठते ही सारिका फुदक कर उसकी गोद में बैठ जाती है, शुक भी दूसरी गोद में धमक कर बैठ जाता है । रानी शुक का पक्ष लेकर कहती है - "सारिका सच बताना - जब तूने मुख से यह पाठ किया 'वदन पर कोटि चन्द्र वारौं' तब तेरे भीतर क्या सत्य छुपा था ?

सारिका जोर से खिल खिलाकर हँसती है - "प्रियतम तो आपके पद तल की लालिमा पर अपने आपको अनेक बार वार चुके है, इसकी तो मैं साक्षी हूँ, फिर मैंने तो मुख पर ही उन्हें न्यौछावर किया है ।"

शुक - (कृत्रिम रोष प्रकट करता हुआ) प्रणयावेश में तो हर एक पुरुष प्रेम जन्य दीन उक्तियाँ करता है, आप भानु नन्दिनी, हम सभी वृन्दावनवासियों की वृन्दावन-महेश्वरी हो, सत्य न्याय करें क्या हमारे सखा इतने तुच्छ हैं कि यह कृष्णमुखी सारिका कोटि-कोटि उनको आप पर न्यौछावर कर रही है ?

रानी धीरे से अतिशय प्यार से शुक को अपने हाथों से उठा लेती हैं और उसकी कर्णेन्द्रिय के पास अति मन्द स्वर में कहती हैं - अर भाई शुक ! तू विश्वास करले, मेरा रोम-रोम उन पर न्यौछावर है, बलिहार है। सारिका कुछ भी कहे, उसका क्या ?

शुक जोर से बोल उठता - "पक्षियों ! सभी रानी की जय जयकार करो । सच्चा न्याय हुआ, सारिका हार गई । पक्षियों रानी को नृत्य करके दिखाओ ! सत्य यही है - हमारे प्रिय सखा के गुण सौन्दर्य एवं प्रीति पर रानी न्यौछावर है । अब तो हम सभी हमारी प्राणप्यारी रानी पर न्यौछावर हैं। ये हमारे सखा की हृदयेश्वरी, प्राणेश्वरी, रोम-रोम की स्वामिनी हैं, ये ही हमारे सखा की जीवनेश्वरी हैं । शुक के आह्वान पर अगणित पक्षी आ जाते हैं। सभी पक्षी आनन्दमत्त होकर नृत्य करते हैं -

राधा रानी की जय, महारानी की जय
प्राण प्यारे की पटरानी की जय जय जय
हृदयेश्वरि की जय, प्राणेश्वरि की जय
हमारे सखा की जीवनेश्वरि की जय जय जय।

रानी और सखियाँ परम प्रसन्न हुई पक्षियों की रसक्रीड़ा देख रही हैं। शुक और पक्षीगण मिलकर ऐसा नयन नचा-नचाकर भावभरा नृत्य कर रहे हैं कि कीर्तिदा मैया आदि सभी मातृपक्ष की स्त्रियाँ भी आ जाती हैं। रानी लज्जा से भर जाती है। सहसा मैया ललिता को संकेत करती हैं कि नन्दभवन से कुन्दवल्ली और धनिष्ठा पहुँच गयी हैं ।

मंजुलीला इसी समय भण्डार से द्राक्षा, बादाम, पिश्तादि बहुत सी मेवा एक रत्नजटित स्वर्णपात्र में रानी को लाकर देती है । एक-एक पक्षी रानी की गोद में आता है, रानी का प्यार भरा संस्पर्श प्राप्त करता है और तब रानी अपने हाथ से उसकी खुली चोंच में मेवा देती हैं। पक्षी आनन्द से उत्फुल्ल रोमांचित हो जाता है। अनगिनत पक्षी हैं परन्तु सभी को रानी एक क्षण में ही मेवा खिला देती हैं । सभी पक्षियों को ऐसा अनुभव होता है कि रानी सर्वाधिक प्यार उसे ही करती हैं ।

अब ललिता एवं मंजुलीला रानी को शय्या से उठाकर उपवन मे एक चौकी में आसीन कर देती हैं । चौकी पर अति सुकोमल मखमल की रेशमी -

रूई भरी गद्दी बिछी है रानी उस पर बैठकर सुगन्धा से सर्वांग में उबटन लगवाती हैं । अहा अतिशय सुगन्धित उबटन भी रानी के अंगों की सुवास के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होती है । रानी के कर्पूर एवं केसर की ज्योति के समान अंग इतने स्वच्छ हैं कि सुगन्धा को रानी के अंगों में अपनी मुख छवि प्रतिबिंबित दृष्टिगोचर होती है । परन्तु रानी को तो सुगन्धा दिखनी ही बन्द हो गयी है उन्हें तो अब प्रियतम श्रीकृष्ण ही उबटन लगाने की प्रार्थना करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं । सुगन्धा रानी के दृश्य पटल से ही विलुप्त हो जाती है । रानी जोर से बोल उठती है - "अरी ललिता ! इन्हें निवारित करो, ये क्या करने जा रहे हैं, इन्हें सादर महल में विराजित करो न । तब तक मैं स्नान करके आती हूँ ।"

सुगन्धा स्तंभित हो जाती है । ललिता दौड़ी आती है । कुन्दवल्ली एवं धनिष्ठा भी वहीं रानी के पार्श्व में ही खड़ी हो जाती हैं । ललिता तनिक डाँटकर कहती है, इस तरह से विलम्ब करेगी तो नंदभवन में पाक रचना हो गयी ? प्रियतम नन्दनन्दन भूखे ही वन का चले जायेंगे ।

ललिता के ये शब्द कानों में जाते ही रानी सजग हो जाती हैं । सुगन्धा पुन: मर्दन करना प्रारम्भ करती है। नलिनी अंगों में पहले सुगन्धित तैल लगाती है ताकि रानी की रोमावलि को उबटन उखाड़ नहीं पावे । अंगों को तैल स्नान कराके नलिनी रानी की वेणी उन्मुक्त कर देती है । घनी काली केशराशि पीठ पर लहरा उठती है । जबतक सुगन्धा पैरों एवं जंघाओं में उबटन करती है तबतक रानी के केशों को नलिनी तैल से खूब सिंचित करती हैं । रानी की घनी कुन्तलराशि पीठ पर एवं कंधों से होती उनकी बाहुओं पर लहराने लगती है ।

ज्यों-ज्यों सुगन्धा उबटन करती है त्यों-त्यों महक के आवर्त्त पर आवर्त्त उठ रहे हैं । रानी के अंगों की विलक्षण सघन गंध से भ्रमरावली सर्व ओर से घिर कर झंकार कर उठती है । वह भ्रमरावली वृन्दा के आदेश से रानी के अंगो पर नहीं टूटती, नहीं तो सब अंगो में गंध लुब्ध हुई चिपक जाती । रानी पुन: भावाविष्ट हो जाती हैं । उन्हें तो यही अनुभव हो रहा है कि प्रियतम ही भ्रमर बने उसके चारों ओर उड़ रहे हैं । वह भ्रमरों की ओर हाथ ऊँचा कर लपकती है । सुगन्धा रानी का प्रियतम प्रेम देखकर स्वयं भावाविष्ट होने लगती हैं । उन्हें रानी के रोम-रोम में प्रियतम भरे दृष्टिगोचर होते हैं । वह देखती है रानी तो मात्र श्रीकृष्ण-प्रवाहिनी रस-धन

प्रतिमा हैं । इनमें अपना अहं, स्व है ही नहीं । प्रियतम ही प्रियतम हैं । उन्हें रानी की केशराशि से लेकर चरण-तालु तक प्रत्येक अंग में मात्र मुसकाता साँवरा मुख दिखता है। उन्हें आश्चर्य होता है कि ऐसा भी हो सकता है क्या ? नलिनी कहती है कि प्रियतम श्यामसुन्दर की भी यही दशा है । एक बार कुंज में वह उनके अंगों में भी तैल मर्दन का सौभाग्य पा चुकी है । उनके अनावृत अंगों में जब उसकी दृष्टि गई तो वह आश्चर्यचकित हो गयी । वहाँ प्रिया ही प्रिया की छवि भरी थी । ललिता, विशाखा एवं चित्रादि सखियाँ रानी को कहानी सुनाती हैं । जिससे उनका ध्यान बँटा रहे । वे भावाविष्ट नहीं हो पावें ।

"तुझे पता है आज मध्याह्न काल के विहार के समय विशाखा एक नवीन कौतुक भरी लीला करने वाली है ? रानी जिज्ञासा से ललिता की ओर देखती हैं । ललिता तत्क्षण कहती है तू पहले उबटन और स्नान तो सम्पन्न कर । मैं सुनाती जा रही हूँ । रानी अपना ध्यान ज्यों ही ललिता की ओर केन्द्रित करती है, त्यों ही ललिता नलिनी एवं सुगन्धा को संकेत करती है कि वे केशों में कंघी करलें और शीघ्रता से उबटन समाप्त करें ।

ललिता पुन: बात आगे बढ़ाती है । रात्रि को प्रियतम विशाखा के कुंज में थे, यह तो तुझे ज्ञात ही है । रानी हुंकार देती है । विशाखा ने प्रियतम से कपटपूर्वक उनके धारण किये सभी वस्त्र, आभूषण, वंशी आदि चुरा लीं और इनके स्थान पर नवीन वैसे ही सभी वस्त्राभूषण उन्हें पहना दिये। रानी की जिज्ञासा बढ़ जाती है। रानी दत्तचित्त ललिता को निहार रही है । पाटला ने आँवला, कल्क आदि के द्वारा रानी के केशों का संस्कार करना प्रारंभ किया ।

ललिता कहने लगी - अब विशाखा मेरे पास अपनी चतुराई से प्रसन्न हुई आई और कहने लगी - सखी ! तू स्वीकृति दे दे तो आज प्रियतम से छद्म किया जाय ? उसने कहा कि आज मध्याह्न में श्यामला को प्रियतम के रूप में सजाया जाय । श्यामला तो प्रियतम का दूसरा रूप है ही, रूप में, लावण्य में, सुकुमारता में, ऊँचाई में, चाल-ढाल में, शरीर रचना में, बोल-चाल में, हँसने-खेलने में विनोद में, मिलन में - वह तो प्रियतम की पूरी प्रतिमूर्त्ति ही है । अस्तु । श्रृंगार होने पर श्यामला सर्वथा प्रियतम का रूप ही हो जायेगी ।

रानी की जिज्ञासा अतिशय तीव्र हो उठी । उसने पूछा - तब ? आगे की बात फिर बताऊँगी - पहले तू स्नान कर ? ललिता के यह कहते ही रानी

झटपट उठकर स्नान चौकी में आकर बैठ जाती है। मंजुलीला स्वर्ण घटों से जल ला रही है । गुण मंजरी उनका साथ दे रही हैं । अहा ! जल कुण्ड़ों में पद्म, गुलाब, केवड़ा , खस के पुष्प रात भर से गिरे हैं । जल में पुष्प सार तैरने लगा है । जल समशीतोष्ण है और अतिशय सुगन्धित हो उठा है । रत्नजटित स्वर्णघटों से जलधारा प्रिया पर गिरती ऐसी शोभा पा रही है मानो वृक्षों से लदे सुमेरु पर स्वर्ग से गंगा गिर रही हो । ललितादि सखियाँ रानी के अंगो-अंगो को मल रही हैं । गुणमंजरी मोटी-मोटी जलधारा डाल रही हैं। रानी के अंगों में से मलने से परम सुन्दर अंगगंध निसृत हो रही है।

रूप मंजरी अति झीना वस्त्र लेकर उपस्थित हैं । ललिता उसे रानी के गीले अंग में लपेट कर उनके पुरातन वस्त्र उतरवाती है । रूप मंजरी बहुत से वस्त्र लिये हैं । रति मंजरी रानी के केशों को सुखाने के लिये एक वस्त्र में सब केशों को कसकर बाँध रही है । केलि मंजरी उनकी पीठ को महीन मल-मल के वस्त्र से पौंछ रही हैं । रति उनकी ग्रीवा, मुख एवं स्तनों को पौंछकर उदर आदि अंगों को पौंछ रही हैं । रानी के अंग ज्यों-ज्यों मले जा रहे हैं त्यों ही त्यों उनका कंचन वर्ण कुन्दन की तरह दमकने लगता है । रानी का अनावृत सौन्दर्य देखकर ललिता मनौती करती है कि कहीं प्रियतम इस शोभा को देख पाते । यह शोभा उनके लिये दुर्लभ है। हाय ! चन्दन, कस्तूरी लेप से तो रानी की शोभा आच्छादित हो जाती है । यह लेप्य सामग्री रानी को कुरूप करती है। उनकी प्राकृत श्रृंगार शून्य छवि से श्रृंगार भी श्रृंगारित होता है, रानी का निरावरण अनन्त सौन्दर्य तो इस ऊपरी श्रृंगार से ढ़क ही जाता है ।

अब मंजुलीलाजी ललिता सखी को रानी के कटि भाग में पहनाने के लिये स्वर्ण तन्तुओं द्वारा अनुपम शिल्प किया हुआ अत्यन्त सुन्दर लाल खोपनाओं से भूषित अत्यंत मूल्यवान नीले रेशम से बना हुआ लहँगा पहनाती हैं । रानी को लँहगे के स्थान पर पुनः श्याम सुन्दर ही अपने कटि देश से लिपटे दृष्टिगोचर होने लगते हैं । बस वे भावाविष्ट हो जाती हैं ।

ललिता पुनः जोर से बोलकर कहती है - "न तो तू पूरी कहानी सुनेगी, न ही नन्दभवन जायेगी ? यहीं इसी प्रकार तुझे पड़ी रहना है तो प्रियतम भूखे ही वन को जायेंगे ? मैं तपस्विनी पौर्णमासी को निवेदित कर देती हूँ । वे कोई दूसरा उपाय करें ।

ललिता का रोष काम कर जाता है । रानी को पुन: बाह्य ज्ञान हो आता है। अत्यन्त विनयपूर्वक कहती हैं - "बहिन ! मेरे नयनों पर मेरा वश नहीं है, वे बार-बार हर वस्तु में उनकी छवि जीवन्त देखने लगते हैं तो क्या करूँ । फिर चित्त भी वश में नहीं रहता, वह भी उनमें डूब जाता है । हाँ, तो फिर विशाखा ने श्यामला का श्रृंगार किया ?" ललिता कहने लगी - सारी कहानी सुनाऊँगी और आज सूर्यपूजन के लिये चलेंगे तो यही लीला होगी । तू पहले श्रृंगार धारण कर । देख ! सूर्य नभ में कितना ऊपर आ गया । नन्दभवन की गायें वनगमन के लिये हम्मरव कर रही होंगी । शीघ्रता कर ।

रानी श्रृंगार कराने श्रृंगार कक्ष में चलने को प्रस्तुत हो जाती हैं ।

(रानी की स्नान-लीला की पू० गुरुदेव द्वारा रचित कथा केलि कुञ्ज नामक गीतावाटिका गोरखपुर से प्रकाशित पुस्तक में देखें)

श्रृंगार एवं नन्द भवन गमन

राधा प्रति कृष्ण स्नेह सुगन्धि उद्वर्त्तन,
ताते अति सुगन्धि देह उज्ज्वल वरण ।
कारुण्यामृत धाराय स्नान प्रथम,
तारुण्यामृत स्नान मध्यम ।
लावण्यामृत धाराय तदुपरि स्नान,
निजलज्जा-श्याम-पट्ट शाटी परिधान।
कृष्ण अनुरागे रक्त द्वितीय वसन,
प्रणय-मान-कंचुलिकाय वक्ष आच्छादन।
सौन्दर्य कुंकुम सखी-प्रणय चन्दन,
स्मित-कान्ति कर्पूर तिने अंग विलेपन।
कृष्णेर उज्ज्वल रस मृगमद भर,
सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर ।
प्रच्छन्न-मान वाम्य धम्मिल्ल-विन्यास,
धीरा धीरात्मक गुण अंगे पटवास ।
राग ताम्बूल रागे अधर उज्ज्वल,
प्रेम कौटिल्ये नेत्र युगले कज्जल ।
सुद्दीप्त सात्विक भाव, हर्षादि संचारी,

एइ सब भाव-भूषण सब अंग भरि।।
किल किंचितादि भाव विंशति भूषण,
गुण श्रेणी पुष्पमाला सर्वांग पूरित ।
सौभाग्य तिलक चारु ललाटे उज्ज्वल,
प्रेम वैचित्य रत्न हृदये तरल ।
मध्यवय स्थिति सखी स्कंधे करन्यास,
कृष्णलीला-मनोवृत्ति सखी आस-पास।
निजांग सौरभालये गर्व पर्यंक,
ताते वसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसंग ।
कृष्णनाम-गुण-यश अवतंस काने,
कृष्णनाम-गुण-यश प्रवाह वचने ।
कृष्ण के कराय श्याम रस मधुपान,
निरन्तर पूर्ण कर कृष्णेर सर्वकाम ।
कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर ।
अनुपम गुण-गण पूर्ण कलेवर ।

भानु किशोरी को सखियाँ सजा रही हैं । उनका श्रृंगार सम्पन्न कलेवर प्रियतम नन्दतनय को परमानन्द-सिन्धु में निमग्न कर देता है। एक मात्र प्राणेश्वर नीलमणि को सुख पहुँचाने के उद्देश्य से ही रानी सज रही हैं। और सखियाँ उन्हें अपने सम्पूर्ण कौशल से सजा रही हैं।

भानु किशारी श्रृंगार सिंहासन में बैठी हैं । प्रभात कालोचित सम्पूर्ण भूषण वस्त्र भूषण पेटिकाओं में से निकाल-निकालकर मंजुलीला सखियों के सम्मुख रख रही हैं । सब सखियाँ अपने मनोरथों के अनुसार जो-जो श्रृंगार चयन करती हैं, वह तो बाहर रख लिया जाता है शेष असंख्य प्रकार का श्रृंगार पुनः यथा स्थान रख दिया जाता है ।

बहुरत्न खचित गजदन्त विनिर्मित स्वस्तिद नामक कंकतिका से श्री मंजुश्यामा उनका केश संस्कार कर रही हैं।

बूझत साँवरि, बहिन ! बतारी ।
हेरि-हेरि अचरज निसदिन अति होउँ अधीर न समुझि गँवारी ।
हौं रचि-रचि कच तोर सँवारत, बेनि निहारि जाउँ बलिहारी ।

पलक परत नहिं परत देत तुम, जानि-अजानि कँपाइ बिथारी ।
सुनत लाड़िली लोचन छल-छल विह्वल गद्‌गद् गिरा उचारी ।
मोर कीर जनि कहिय सबहिं तन कन-कन पूरि रहहिं गिरधारी ।
अलकन यह पिय कौ बंधन लखि सपनहुँ सूल परत उर भारी ।
तुम उन मुकुत सुखी नित निरखउँ चाह परान पिरोवत सारी ।

(पू० गुरुदेव की काव्य रचना)

अपनी सम्पूर्ण चतुराई से श्री मंजुश्यामा अपनी बहिन श्री राधा की वेणी गूँथती हैं । छोटी-छोटी कलियों को यथा स्थान सुगुम्फित करके कुशलता के साथ श्यामला मंजरी उन्हें मालाएँ बना बनाकर दे रही हैं । मंजुश्यामा उन्हें लटों के साथ इस प्रकार गूँथ रही हैं कि वेणी अद्‌भुत सुन्दर हो उठे । पर यह क्या हुआ ? उसका सारा श्रम और श्यामला की सारी चतुरायी व्यर्थ ही हो जाती है। रानी अपनी वेणी को इस प्रकार प्रकम्पित कर देती हैं कि सारे केश बन्धन विहीन होकर उन्मुक्त हो जाते हैं और सभी मालायें भूमि पर बिखर जाती हैं। अपने श्रम को व्यर्थ समझकर खिन्नमना श्रीमंजुश्यामा अपनी बहिन श्री राधा से पूछती हैं - "अरी बहिन ! तू ऐसा क्यों कर देती है ? मैं तो इतने श्रम से चतुराई पूर्वक तेरी वेणी को गूँथती हूँ और तू इस प्रकार से वेणी को प्रकम्पित कर देती है कि केश खुल जाते हैं । और समस्त वेणी गुम्फन ही व्यर्थ हो जाता है ।" रानी बड़े प्यार से अपनी सहोदरा को उत्तर देती है ।" देख, बहिन ! मैं तेरा मन रखने के लिये वेणी रचना करवा लेती हूँ । पर मेरी जब दृष्टि मेरे इन केशों पर जाती है तो मुझे ये केश नहीं प्रियतम दिखाई पड़ते हैं । देख बहिन । ये मोर हैं शुक हैं, संसार इन्हें कुछ भी कहे परन्तु मुझे तो सभी के कण-कण में प्रियतम गिरिधारी ही भरे प्रतीत हो रहे हैं । अब मुझे तो यह मात्र अलकों का बन्धन तो लगता है नहीं, प्रियतम को बँधा मान कर मेरे तो हृदय में भंयकर शूल की पीड़ा होती है । मैं तो उनको नित्यपूर्ण मुक्त एवं सुखी देखना चाहती हूँ । तुम उन्हें मालाओं में, फूलों में पिरोती हो तो लगता है जैसे मेरे प्राण पिरो रही हो ।

अत: रानी के केशों का सखियों द्वारा संस्कार तो हो जाता है परन्तु वे उन्मुक्त वेणी निर्बन्ध ही रहते हैं । अब भी उनमें जल का अवशेष नहीं रहे इसलिये सखियाँ अगुरू, धूप, आमला, ब्राह्मी आदि अनेक औषधियों के धूम

द्वारा रानी के केश कलाप को सुखा अवश्य देती हैं । रानी को नीले रेशम का लहँगा तो स्नान के समय ही पहना दिया जाता है, परन्तु उसके ऊपर लाल रंग का अत्यन्त सुन्दर वसन श्री ललिताजी पहनाती हैं। इस लाल रंग के वसन में नक्षत्रों के समान हीरा मणियाँ जड़ित हैं । तत्पश्चात् रूप मंजरी ने कटिदेश में क्षुद्र घंटिकायुक्त काँची-मेखला धारण करवाती हैं । इस काँची करधनी के मूल प्रदेश में भाँति-भाँति के रत्न पिरोये हुए हैं तथा इनमें पाँच वर्ण के झूमर शुक, नील, पीत और हरिद्रा वर्ण के शोभित हैं ।

मंजुश्यामा एवं विशाखा अब कर्पूर, अगुरु और चन्दन द्वारा श्रीमती का पृष्ठ देश, बाहु-युगल, कुचद्वय, वक्षस्थल आदि विलेपित करती हैं । सिन्दूर से ललाट देश में सीमन्त रेखा लगाती हैं तथा कामयंत्र नामक तिलक रचना करती हैं । चन्दन बिन्दुओं द्वारा तिलक के दोनों पार्श्व में कपोलों तक कस्तूरी से पत्रावली रचना करती हैं । मंजुश्यामा प्रिया के वक्षोजों पर मृगमद द्वारा चन्द्ररेखा, पद्म, मकरी तथा आम्र पल्लव चिचित्र करती हैं। तत्पश्चात् रंगदेवी श्री किशोरी के कर्ण युगलों में स्वर्ण निर्मित कमल कली के आकार के ताटंक युगल पहनाती हैं । तुंगविद्या सखी श्रीराधाकिशोरी के कर्ण युगलों में ऊपर की ओर स्वर्ण से बने अति मनोहर चक्र शलाका द्वय पहनाती है । श्रीविशाखा रानी के नासाग्र भाग में बेसर पहनाती हैं । पश्चात् ललिता पहले कसौटी सिल पर अपने नाखून घिसती हैं, तब मध्यमा अंगुली से मनोज्ञ अंजन द्वारा रानी के नयनों को आँजती हैं ।

श्री विशाखा रानी को गुच्छ नामक हार पहनाती हैं यह वैदूर्य मणियों की दो-दो पंक्तियों के बीच हेम निर्मित बीज के समान लम्बित गुटिकाओं से युक्त है। रानी को मंजुश्यामा गुंजा का हार धारण कराती है। पूर्व रात्रि में प्रियतम ने नृत्य गीतों से रीझकर रानी को उपहार स्वरूप यह गुंजाहार दिया था । जिसे रानी मंजुश्यामा को सम्हला कर भूल ही गई थीं ।

श्री ललिताजी इन्द्रनील मणि के वलय रानी के मणिबंधों में पहनाती हैं। इन्द्रनीलमणि के वलयों के बीच में मुक्तावलि रचित सुवर्ण कंकण शोभा पा रहे हैं । इन कंकणों से श्यामल ज्योत्स्ना की तरह आभा प्रसरित हो रही है। अब ललिता ने नाना प्रकार के अंगुलीयकों को रानी को पहनाया । इन सभी अंगुलीयकों में राधा नाम अंकित था ।

श्री विशाखाजी किशोरी के चरणों में पदवलय आभूषण पहनाती हैं । ये अत्यन्त ही मनोहारी शब्द-ध्वनि किया करते हैं।

अब नर्मदा मालिन कन्या द्वारा लाये लीला कमल श्री विशाखाजी ने रानी के हाथ में दिये । लीला मंजरी ने रानी को स्वर्णमय रत्नखचित दर्पण दिखाया।

चम्पकलता ने पनबट्टे में से सुन्दर एला, लवंग और सुगन्ध द्रव्य से भरा स्वर्ण बरक से आच्छादित हुआ पान का बीड़ा निकाला और रानी के मुख में दिया । श्री मंजुलीलाजी ने आधा चर्वित बीड़ा रानी के मुख से लेकर कुन्दलता को दे दिया । कुन्दलता यह बीड़ा प्रियतम के मुख में दे देगी । कुन्दलता द्वारा लाया आधा चर्वित प्रियतम का बीड़ा मंजुलीला प्रिया के मुख में देती हैं ।

ललिता एक काजल की रेखा दृष्टिदोष निवारण के लिये प्रिया के कपोलों पर खींच देती हैं । परन्तु इस कज्जल रेखा ने तो प्रिया के मुख की सुन्दरता और अधिक अभिवर्धित कर दी है ।

सखियों द्वारा श्रृंगार हो जाने पर रानी गुरुजनों एवं भगवती त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर में प्रणाम करने जाती हैं। लज्जा से झुके नेत्र उनके चरणों में विजड़ित हैं । चलते समय उनके नूपुर झंकार कर रहे हैं । श्री ललिता उनके एक हाथ को थामे हैं । श्री मंजुश्यामा उन्हें कंधे से सहारा दिये हैं ।

अनुपम छवि, अनुपम रूप - लावण्यवती रानी के अंग-अंग से सौन्दर्य चू रहा है । उनके नयनों में अपार वैदग्ध्य एवं अनुराग छलक रहा है । उनके अंग-अंग से कुंदन ज्योति दमक रही है । बारंबार भाव प्रवणता वश वे रोमांचित एवं चमत्कृत होती हैं ।

उनके कटि प्रदेश में कांची नामक आभूषण उनके चलने से इस प्रकार शिंजन ध्वनि कर रहा है मानो यमुनाजी में असंख्य हंसों के यूथ काकली कर रहे हों । उनके चरणों में मंजीर नामक आभूषण की मधुर ध्वनि हो रही है। भिन्न-भिन्न आभूषण सभी संविन्मय होने से अपनी-अपनी सेवा से प्रिया की शोभा को बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं । सबकी भीतरी चाह यही है कि प्रिया के अंगों से एकात्मलाभ प्राप्त कर प्रियतम सुख का संवर्धन करें ।

सद्रूप, सौशील्य एवं मांगल्य की मूर्तिमान स्वरूपा रानी भगवती आद्या शक्ति त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर में उनकी सच्चिन्मयी प्रतिमा को प्रणाम करने पहुँचती हैं ।

श्री त्रिपुर सुन्दरी की प्रतिमा प्रासाद कक्ष में ही प्रियतम।
अद्भुत सुवर्ण से विरचित थी, फिर था प्रभाव ऐसा प्रियतम।

हो जाता स्वत: नमित सबका सिर मन्दिर परिसर में प्रियतम।
हो कहीं चित्त की वृत्ति, किन्तु आते ही सीमा में प्रियतम।

चाहे कोई कैसा भी हो, भावित होता सहसा, प्रियतम।
विस्मृत सब कुछ होकर समाधि मानो लग जाती थी, प्रियतम।
प्रहरी ही होश कराता यह कहकर 'दर्शन कर लो' प्रियतम।
लेकर अञ्जलि में पुष्प तथा पंकिल लोचन से, हे प्रियतम।

जाकर जब अर्पित कर देता, अपने को श्री पद में प्रियतम।
होता था भान तभी उसको अग्रिम कर्त्तव्यों का प्रियतम।
वे अहो ! न जाने कबसे थीं राजित देवी कुल की प्रियतम।
युवराज रूप में ही जब थे वे वर्त्तमान राजा प्रियतम।

ऋषितुल्य पितृ चरणों की ले अनुमति ली थी उनने प्रियतम।
अपने ऊपर संभाल पूरी देवी की सेवा की प्रियतम।
उसके पहले भू देवों के द्वारा अर्चन होता प्रियतम।

वृषभानु राजा के प्रासाद कक्ष में ही भगवती त्रिपुर सुन्दरी की प्रतिमा थी। ये देवी राजा की कुल देवी हैं । प्रतिमा अद्‌भुत स्वर्ण से विरचित है और उसका ऐसा प्रभाव है कि चाहे कोई किसी इष्ट को मानने वाला हो, मन्दिर परिसर में प्रवेश करते ही उसका मस्तक स्वत: ही नमित हो जाता है । किसी की चित्तवृत्ति चंचल भी हो, चाहे कोई कैसा भी हो, मन्दिर की सीमा में आते ही वह भक्ति भावित हो उठता है। उसको सबकुछ विस्मृत हो जाता है और समाधि लग जाती है। उसे मन्दिर का द्वार रक्षक ही होश कराता है कि भाई दर्शन करलो। वह अश्रु भरे पंकिल नेत्रों से अंजलि में पुष्प लेकर जब अपने को भगवती के चरणों में जाकर अर्पित्त कर देता, तब उसे अग्रिम कर्तव्यों का भान होता है।

वे देवी इस भालुकुल में न जाने कब से शोभायमान हैं, इसका किसी को पता नहीं है । जब वर्तमान राजा युवराज रूप में थे तभी ऋषितुल्य पितृ चरण की अनुमति ले उन्होंने देवी की सेवा का भार अपने ऊपर लिया था, उसके पहले ब्राह्मणों द्वारा ही इनका अर्चन होता था ।

रानी जैसे ही प्रतिमा के चरणों में गिरी वैसे ही दो सुगन्धित पद्म पुष्प रानी के मस्तक पर आशीर्वाद रूप में गिरते है । सम्पूर्ण अन्तरिक्षचारी त्रिलोकी के ऋषि मुनि "अखण्ड सौभाग्यवती भव" का जैसे उद्घोष कर रहे हों , अन्तरिक्ष से बड़ी विलक्षण ध्वनि गुंजारित हो उठती है ।

रानी देवी को कर प्रणाम देवी मन्दिर के बाहर आकर सभी गुरुजनों, ब्राह्मणों, ऋषियों को प्रणाम करती हैं ।

कुन्दलता रानी के स्कंध देश को पकड़कर अत्यन्त प्यार से उसका मस्तक सूँघती हुई कहती हैं - "चल ! तुझे नन्दमहिषी यशोदा ने शीघ्र निमंत्रण दिया है ।" रानी के मुखारविन्द पर उत्कंठा और आनन्द के चिन्ह प्रकट हो जाते हैं । रानी मैया कीर्तिदा को प्रणाम कर नन्द भवन की ओर प्रस्थान का मानस बना लेती हैं ।

वे सभी सखियों सहित तेजी से छत की सीढ़ियों से उतरती हैं तथा महल के पश्चिम की तरफ उपवन में जा पहुँचती हैं । रानी उत्कंठावश इतनी तेजी से चल रही हैं कि रूप मंजरी उनकी नीली रत्नजटित ओढ़नी लेने के लिये पीछे लौटती हैं, उन्हें रत्नजटित ओढ़नी दौड़कर पहुँचानी पड़ती है। ललिता, कुन्दवल्ली सभी को रानी के साथ दौड़कर चलना पड़ता है । वे उपवन के द्वार को पारकर राजपथ में पहुँच जाती हैं। इसी समय रूपमंजरी पीछे से आकर उन पर ओढ़नी उढ़ा देती हैं । ओढ़नी ओढ़े हुए रानी नन्दमहल की ओर गति करती हैं ।

कुन्दवल्ली रानी को वन दर्शन कराती हैं ।

वृन्दारण्य के कण-कण में नव-नव शोभा उमड़ रही है । रानी की दृष्टि कुन्दवल्ली जिधर करती है उधर ही शोभा की राशि बिखर उठती है । कभी कुन्दवल्ली रानी को दक्षिण दिशा की ओर कभी उत्तर दिशा की शोभा पर दृष्टि पात करने को कहती हैं ।

कुन्दवल्ली रानी को नव-नव निकुंज स्थली की ओर लता पल्लव जाल से आवृत सुरम्य वन स्थली की ओर संकेत करती हैं, रानी की दृष्टि वहाँ पर पड़े इसके पूर्व ही प्रकृति की समग्र सुरम्यता वहाँ मूर्त्त होने की स्पर्धा कर उठती है, परन्तु रानी को तो इस शोभा के अन्तराल में भरे उसके प्रियतम ही उसकी ओर मुसकाते, नेत्र नचाते, कुंज की ओर आने का प्रेम निमंत्रण देते, ललित तृभंगी में खड़े दिखाई पड़ते हैं।

रानी प्रेमावेश से कभी ऐसी काँप जाती हैं मानो उन पर विद्युत गिर पड़ी हो। कभी रोमांचित हो जाती हैं। कभी उन्हें स्वेद प्रवाह हो उठता है। ललिता किसी तरह उन्हें सँभालती हैं। रानी को तो वन-पार करना ही कठिन हो जाता है, परन्तु इसी समय यशोदा मैया नन्दभवन से नान्दीमुखी को पुन: भेजती हैं कि रानी को किस कारण अतिशय विलम्ब हो रहा है। नान्दीमुखी को आयी देखकर सभी सखियाँ उन्हें प्रणाम करती हैं। नान्दीमुखी के साथ अन्य सखियाँ भी हैं। सभी रानी को कंठ से लगाकर सिर सूँघकर आशीर्वाद देती हैं। इन सभी सखियों के साथ रानी नन्दभवन के मुख्य द्वार पर पहुँचती हैं।

नन्दभवन में प्रवेश

श्री ललिता राधारानी के आगे हैं, पीछे मंजुश्यामाजी हैं, कभी पार्श्व में और कभी पीछे गुणमंजरी चल रही हैं। रानी का वाम स्कंध थामे कुन्दवल्ली है। एक ओर नान्दीमुखी हैं। मंजुश्यामा के पास अशोक एवं रति हैं। एक ओर विशाखा हैं।

रानी सभी सखियों के साथ नन्दभवन में प्रवेश करती हैं। श्रीनान्दीमुखी श्री राधाकिशोरी को नन्दभवन का उद्यान दिखती हैं। वे कहती हैं - हे किशोरी रानी, देखो ! यह अप्रतिम शोभाशाली उद्यान महाराज नन्द के परम लाड़िले एवं यशोदा प्राणधन श्रीकृष्ण का परम प्रिय उद्यान है।

'श्रीकृष्ण' इतना नाम सुनते ही श्रीराधाकिशोरी के अंगों-अंगों में जैसे विद्युल्लहरी दौड़ गयी हो, उनके रोम-रोम से कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण प्रतिध्वनि होने लगती है।

नंदनन्दन नन्दभवन के भीतर महल के पास खड़े हैं। नान्दीमुखी श्रीकृष्ण की ओर राधा किशोरी का ध्यान आकृष्ट करती हैं। किशोरी देखती हैं श्रीकृष्ण उन्हीं की ओर देखते मन्द मुसका रहे हैं।

एक क्षण किशोरी के नयन श्रीकृष्ण के नयनों से मिलते हैं। श्री किशोरी रानी लज्जा से संकुचित हो जाती हैं। मन की पुन: दर्शन की लालसा नयन उठाकर देखने को कहती है, परन्तु लज्जा जैसे उनके नयनों को जकड़ कर नीचा कर देती है। उनके पैर स्तंभित हो जाते हैं। गति का नियंत्रण उनके हाथ में नहीं। उनके मन-प्राण बुद्धि एवं इन्द्रियों की समग्र चेतना सिमटकर

नयनों में ही मानो आकर भटक गयी है। मन की लालसा इतना प्रबल जोर मारती है कि लज्जा का अवरोध कुछ शिथिल हो जाता है। नयन ऊँचे हो जाते हैं पुन: प्रियतम श्रीकृष्ण की दृष्टि से उनके नयन मिल जाते हैं। अब तो लज्जा तरंगिणी में ज्वार हो आता है। गाढ़ लज्जा बल-पूर्वक नेत्रों को झुका देती है। अंग जड़ हो जाते हैं। ललिता जोर से कहती हैं - "क्या करती है, यशोदा मैया सम्मुख खड़ी हैं। पैर यन्त्रवत् चल पड़ते हैं। नन्दनन्दन के अत्यन्त निकट से चलकर किशोरी एवं सखियाँ नन्द प्रांगण में पहुँच जाती हैं।

प्रेम विभोर भानु किशोरी को देखकर अखिल रसामृत मूर्त्ति प्रियतम में रस की एक अभिनव नवीन बाढ़ आ जाती है। बिन्दु के रूप में वह रस उनके नेत्रों से छलक कर बहने लगता है। रसमय नेत्रों से वे किशोरी का रूप देखते आये हैं और अनन्त काल तक यही रूप देखते रहेंगे। उनकी दृष्टि में माणिक मोती हीरे जवाहरात का तो कोई मूल्य ही नहीं है। जिसे देख देखकर वे अब तक तृप्त नहीं हुए, अनंत काल तक तृप्त होंगे भी नहीं वह भानु किशोरी का विलक्षण सुन्दर श्रृंगारित रूप यह है --"रानी अपने प्राण-प्रियतम की दृष्टि में उनके स्नेह का उबटन लगाये हुए है। इस उबटन में सखियों का प्रणयरूप सुगन्धित द्रव्य भी मिश्रित रहता है। उसी से किशोरी के अंग स्निग्ध, कोमल, सुगन्धपूर्ण एवं उज्ज्वल हैं। पहले किशोरी रानी कारुण्य रूप अमृतधारा में स्नान करती हैं, यह किशोरी का प्रात: स्नान कौमार है। फिर तारुण्य की अमृतधारा मे स्नान करती हैं, यह उनका मध्याह्न स्नान कैशोर है। ये दो स्नान करने के पश्चात् रानी लावण्य की अमृत धारा में अवगाहन करती हैं। यह किशोरी का सायाह्न तृतीय स्नान (कैशोर-सौन्दर्य) है। स्नान के पश्चात् रानी ने लज्जा रूप साड़ी पहनी है। यह साड़ी श्यामवर्ण की ही होती है और दिव्य श्रृंगार-रसमय तन्तुओं से निर्मित है। रानी कृष्ण अनुराग की अरुण साड़ी भी धारण करती है, तथा प्रणय एवं मान की कंचुलिका से उनका वक्ष:स्थल आच्छादित है। रानी के अंग विलेपन में सौन्दर्य रूप कुंकुम, सखी-प्रणय रूप चन्दन एवं अधरों की स्मिति, कान्ति रूप कर्पूर चूर्ण मिश्रित रहता है। रानी ने मधुर रस की मृगमद (कस्तूरी) लेकर श्री अंगों को सुचित्रित किया है। प्रच्छन्न बंकिम मान के द्वारा केशबन्ध की रचना की है। उन्होंने किसी दिव्य धीरा-धीरा सुन्दरी के दिव्य गुणों को लेकर उससे उनका सुगन्धित चूर्ण (पटवास) निर्मित किया

है, वे राग का ताम्बूल ग्रहण करती हैं, इस ताम्बूल-राग से उनके अधर उज्ज्वल अरुणवर्ण हो उठे हैं; प्रेम के कौटिल्य रूप अंजन से वे दोनों नेत्रों को आँजे हैं। सुदीप्त अष्ट सात्विक भाव, अश्रु, स्वेद, रोमाञ्च, कंप, मूर्च्छा, उन्माद, विलय, प्रलयादि तथा हर्ष आदि तैंतीस संचारी भाव-भूषणों को रानी अपने सर्वांगों में धारण किये हैं। किल किञ्चित आदि बीस भाव ही रानी के श्री अंगों के अलंकार हैं। माधुर्यादि दिव्य पचीस सद्गुणों की पुष्पमाला से समस्त अंग पूर्ण हैं। सुन्दर ललाट पर सौभाग्यरूप सुन्दर मनोहर तिलक सुशोभित है। प्रेम वैचित्य रूप रत्नहार उनके हृदय पर नाच रहा है।

नित्य किशोर वयस रूप सखी के कंधे पर वे हाथ रखे हैं। कृष्ण-लीलामयी मनोवृत्ति रूप सखियाँ उन्हें घेरे हैं। अपने श्री अंग के सौरभ रूप गृह में वे दिव्य गर्वपर्यंक पर विराजित रहकर सदा श्रीकृष्ण मिलन का चिन्तन करती रहती हैं। कृष्णनाम, कृष्ण गुण, कृष्ण-यश का ही कानों में अवतंस रूप कर्णभूषण अलंकार धारण किये हैं। श्रीकृष्ण नाम, यश, एवं गुण के गान-प्रवाह से उनकी वाणी समलंकृत है। श्यामरस दिव्य श्रृंगार रसरूप मधु से पूरित पात्र हाथ में लिये वे श्रीकृष्णचन्द्र को मधुपान कराती हैं। यही भानु किशोरी के हाथों की शोभा है। समस्त अंगों से एकमात्र श्रीकृष्ण की सेवा होती है - यही किशोरी की अंग शोभा है। प्रियतम श्रीकृष्ण को रानी का बाह्य श्रृंगार दिखता ही नहीं, उन्हें तो वे अपने निर्मल प्रेम की आकार ही प्रतीत होती हैं, उनके अंगों के अन्तराल से प्रियतम प्रेमभूत अनन्त सद्गुण चमकते रहते हैं।

योगमाया मञ्च पर अपना वैभव बिखेर कर लीला क्रम का निर्देश करती जा रही हैं तथा उसी क्रम से लीला आगे बढ़ रही है।

पाक रचना भोजन एवं वृषभानुभवन लौटना

नन्दभवन के मुख्यद्वार के समीप नन्दनन्दन खड़े हैं। उनके अत्यन्त निकट से चलकर रानी एवं सखियाँ नन्दप्रांगण में जा पहुँचती हैं। मरकत-मणियों की अकृत्रिम भूमि है। उस भूमि पर स्वर्णमय गुल्म लताएँ एवं द्रुम समूह परिशोभित हैं। कहीं स्वर्ण की वीथियाँ बनी हैं।

स्वर्ण ही स्वर्ण आस्तृत है। मृत्तिका का लेश भी नहीं। और इस स्वर्ण भूमि में मरकत मणिमय वल्लरियों की, गुल्मतरु पंक्तियों की छटा फैल रही है।

कहीं पद्मराग रचित भूमि है तो - उन पर स्फटिक निर्मित गुल्मलता वृक्ष समूह विराजित हैं और कहीं स्फटिक रचित भूमि है तो पद्मराग रचित लताएँ, गुल्म, तरुराजि झूम रही है। मरकत द्रुम समूह कनकलताओं से परिव्याप्त हैं। स्वर्ण पादप श्रेणी मरकत निर्मित वल्लरियों से सुमंडित हो रही है, स्फटिक रचित वृक्षावलि है तो शाखायें विविध रत्नों से बनी हैं, फिर प्रत्येक शाखा मणिमय पल्लवजाल से मंडित है। बहु वर्ण-मणिमयी पल्लवराजि की शोभा अकथनीय है। ऐसे मणिपल्लव नहीं जिनमें रत्नमय कुसुम निकर झलमल नहीं कर रहे हों। कुसुम समूहों से भाँति भाँति के सौरभ झर रहे हैं। वृक्षों के मूल देश में आलवाल निर्मित हैं, मणिद्रवों से ये अपने आप सब ओर से पूर्ण रहते हैं। अत्यन्त सुन्दर मणिमय विहंगमगण इनमें विहार कर रहे हैं।

भवन के प्राचीर का निर्माण हरित मणि से हुआ है। गृह समूह मरकत मय हैं। गृह के आच्छादन स्वर्णमय हैं। स्तंभ प्रवाल निर्मित हैं। वेष्टनी स्फटिक घटित है। गृह चूड़ा वैदूर्य रचित है। अट्टालिकाएँ महानीलकान्त मणि निर्मित हैं। द्वारावलि कुरुविन्द मणि प्रस्तरों से निर्मित हैं। विविध भाँति से सुचित्रित इस भवन की तुलना नहीं हो सकती।

स्थान-स्थान पर शिल्प नैपुण्य से अंकित शुक-पिक आदि पक्षियों की प्रतिकृति भ्रम उत्पन्न कर देती है। यह निर्णय करना ही अत्यंत कठिन है कि ये छबि हैं या जीवन्त विहंगम। छबिमय होते हुए भी सब कुछ चिन्मय। मणिमुक्ता रत्न आदि भी कठोर नहीं अत्यंत कोमल हैं।

नन्दभवन में मुकुन्द माता यशोदा, रोहिणी एवं अन्य गृहपरिजन रानी के स्वागतार्थ महल के बाहर ही खड़े हैं। रानी पर दूर से दृष्टि पड़ते ही मैया आनन्द में डूबने लग जाती हैं। रोहिणी उन्हें नियंत्रण में रखती हैं अन्यथा तो रानी के स्वागत में वे दौड़ पड़ें। फिर भी वे आगे बढ़कर रानी का पुष्प बिखेर कर स्वागत करती हैं। गगन एवं वृक्ष समूह स्वतः ही रानी के पथ को पुष्पास्तृत कर देते हैं।

माता यशोदा को अपने पुत्र नन्दनन्दन को आलिंगन करने में जो सुख मिलता है। वात्सल्य रसघन मूर्ति मुकुन्दमाता अपने रस का आवेग सहन नहीं कर पा रही हैं, उनके नयन प्रेमाश्रुओं से छलछला आते हैं। मुख से केवल 'राधा, वत्से, बेटी !' बस यही निकल रहा है । वात्सल्य रस जैसे मूर्त्त हुआ

उमड़ पड़ा हो, श्रीयशोदा को साक्षात् दिखाई पड़ रहा है इस राधा नामक किशोरी के अंग-अंग रोम-रोम जैसे नील नीरदाभ नन्दनन्दन नामक पदार्थ से ही बने हों । कोटि-कोटि नन्दनन्दन जैसे श्रीराधाकिशोरी के अणु-अणु में भरे मुकुन्दमाता को माँ-माँ पुकार रहे हों । मुकुन्दमाता यशोदा के स्तन वात्सल्य से झरने लगते हैं । सखियों के मस्तक पर माँ के स्नेह दुग्ध की बूँदे अभिषेक कर रही हैं । माता अत्यन्त आश्वस्त हुई रोहिणी से कहती हैं - "अब तो मेरी लाड़िली बेटी आ गयी अब तो एक क्षण में ही सब हो जायगा। रोहिणी रानी को सखियों सहित विश्राम कक्ष में ले जाती हैं । रानी को पथ से थकी जान परिचारिकायें गरम जल में नमक डालकर उनके चरण धुलाती हैं । कुछ देर सभी सखियाँ किशोरी सहित सहते-सहते नमकीन उष्ण जल में चरण रखती हैं । इससे सभी की थकान उतर जाती है । ललिता मंजुलीला को लेकर रोहिणीजी से रसोई में सब भोजन व्यवस्था समझ लेती हैं। तबतक रानी, मधुमती सहित एकान्त कक्ष में विश्राम करती हैं । मधुमती उनके धीरे-धीरे चरण दबा रही हैं ।

प्रिया के नेत्रों के सम्मुख प्रियतम की नन्दोद्यान में दृष्टि में आयी छबि ज्यों की त्यों जीवन्त है ।

अहा ! उसके प्रियतम कितने मनोहर हैं ? उनका वर्ण काजल के समान चिक्कण है । परन्तु काजल में मात्र सुचिक्कणता के अतिरिक्त और कोई गुण तो है नहीं । वह न सुधा के समान शीतल है और न ही सरस; मधुर एवं प्राणों को आप्यायित करने वाली मादकता भी उसमें नहीं है । उसके प्रियतम कैसे मधुर, लावण्यमय, प्राणों को मथने वाली आकर्षण शक्ति से युक्त एवं साथ ही साथ ज्योतिर्मान भी हैं । इन्द्रनीलमणि में ज्योति है. परन्तु उसमें तो जड़ कठोरता है । उसके प्रियतम के अंग-अंग अनाविल ज्योतिर्मान हैं साथ ही पद्मदलों की तरह परम सुकोमल हैं । हाँ, सरसता की दृष्टि से उनकी तुलना कुछ मेघमाला से की जा सकती है । नील कमल उनके अंगों की कोमलता को अवश्यमेव बहुत ही थोड़े अंश में पा सकता है । परन्तु इन सभी के गुण ससीम है । मेरे प्रियतम तो माधुर्य, लावण्य, सौन्दर्य, कान्ति, सरसता, मादकता, आकर्षकता सभी में अपरिसीम, असमोर्ध्व हैं । वे तो विविध क्रीड़ारस के आकार हैं । अहा, उनकी कैसे घुँघराली अलकें हैं।

किशोरी की सम्पूर्ण वृत्तियाँ ध्यान में एकाग्र हो ही रही थीं इतने में ही यशोदा मैया की अति लाड़भरी शब्द ध्वनि उन्हें सुनायी पड़ती है। "वत्से

राधे ! मेरी लाड़िली ! तुम्हारे हाथों निर्मित भोजन सामग्री की प्रशंसा सम्पूर्ण गोकुल कर रहा है । और मेरा पुत्र बलराम एवं कन्हैया तो उसके लिये सदैव लालायित रहते हैं । बेटी तुम्हारी बनायी रस मलाई (पियूष ग्रन्थिपानीय) जो गाढ़े रढ़े मलाईदार दूध और छेना (अमिक्षा) के द्वारा निर्माण की जाती है और अमृतकेलि (मावे की जलेबी), कर्पूरकेलि (रबड़ी, दूध में मलाई के मोटे लच्छे पड़ा मिष्ठान्न) को मेरा वत्स बहुत ही रुचि से खाता है।

श्रीकिशोरी मैया की शब्दावली सुनकर सजग हो जाती हैं । रानी को रसोई घर में ले जाने ललिता आती हैं । रानी का हाथ लगाकर विशाखा शिखरणी बनाने में जुट जाती है । शशिलेखा विशाखा को सहयोग दे रही है। चम्पकलता (दुग्धसार) मावा निर्माण कर रही हैं। तुंगविद्या छाना (आमिक्षा) निर्मित करने लगीं । चित्रा मिश्री खंड बना रही है । रंगदेवी खण्ड-मण्ड बना रही है। सुदेवी खीर (पायस) बनाने जुटी है। मंगला जलेबी (कुण्डलिका) बना रही है। वासन्ती फीनी (मृदुफेनिका) निर्माण कर रही है। कादम्बरी चन्द्रकान्ति (मीठी फीनी) बना रही है । लासिका सत्तू तन्दुल चूर्ण पिण्डि निर्माण कर रही है। कौमुदी शष्कुली गुजिया बना रही है।

सभी सखियाँ एवं मंजरियाँ पाक कार्य में लग जाती हैं । अत्यंत शीघ्र ही सभी सखियों के सहयोग से गुण, सौरभ और रस एवं स्वाद में एक से एक उत्कृष्ट उत्तम सामग्रियाँ भगवती योगमाया स्वयं निर्माण करती जा रही हैं और राधा रानी के सम्मुख रखती जा रही हैं । रानी मात्र उसमें अपना हाथ रख देती हैं, और वह सामग्री अनन्त आयुवर्धक अमृततुल्य हो जाती है।

कांचन वल्ली ने अति सुमधुर मलाई के लड्डू निर्माण कर लिये । मैया यशोदा ने प्रभात ही प्रभात जो सुगंधा नामक गौ के दुग्ध से नवनीत निकाला था, उसमा घृत निर्माण कर लिया मंजुलीला ने । वही घृत सभी सामग्री में प्रयोग हो रहा है । अम्बिका ने वृजराज द्वारा धवला कामधेनु का स्वयं निज हाथों दुह कर रामकृष्ण के पानार्थ जो दूध रखा था उसे खूब रढ़ाकर पीने योग्य बना दिया । शशिमुखी और रंगमाला आम्र, दाड़िम, बदरी, रुचक (सेव), नींबू, केला, अदरक (सौंठ), खारक (खजूर), अमृतफल (अमरूद) आदि सुसंस्कृत कर रही हैं ।

रोहिणी मैया यशोदा को सखियों के सहयोग से रचित सभी सामग्रियाँ दिखा रही हैं । हे यशोदे ! निरीक्षण करो - यह चन्द्रतुल्य पायस, यह कदली

पिष्टक, यह क्षीर-सार, यह आमिक्षाकन्द (छेने की मिठाई) और यह अमृत केलि, सब मधुर मिष्टि राधा ने बना दी हैं ।

ये विविध शाक शकरकन्द, आलू, केला, कूष्मांडों एवं तोरी, लौकी, गोभी, टिण्डों, जमीकन्द आदि मूलों से रचित हैं । अहा ! जायफल, दालचीनी, जावित्री, धना, जीरा, हल्दी, हरी मिर्चादि के संयोग से ये विविध प्रकार के रायते भानुकिशोरी ने बनाये हैं, ये परम सुस्वादु हैं और इन्हें भानुकिशोरी ने नन्दनन्दन की तृप्ति के लिये विशेष मनोयोग पूर्वक रचना किये गये हैं ।

ये विविध, अचार हैं, ये शाक, ये पूड़ियाँ, ये धान्य और ये भिन्न-भिन्न दालें हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री रोहिणी, यशोदा मैया को अतिशय हर्ष से दिखा रही हैं ।

श्रीयशोदा किशोरी को अत्यंत श्रमित जान अत्यंत प्रेम से उनको अपने हृदय से लगाती हैं, और उनके ऊपर राई लौन वारती हैं, अपने आँचल से उन पर व्यजन करती हैं । रानी रसोई घर से अपने कक्ष में आ जाती हैं । उनकी दृष्टि तो तोरणद्वार में भटक रही है, कहीं श्रीकृष्ण दृष्टिपथ में आ जावें तो उनके प्राणों की सम्पूर्ण थकान मिट जाये ।

पूजागृह के पार्श्व में एक बड़े सुन्दर कक्ष में चतुर्दिक् सुन्दर स्वर्ण के पीठ रखे हैं उन पर मखमल के आसन लगे हैं । उनके ऊपर नवनीत से स्वच्छ वस्त्र बिछे हैं । इन स्वर्णपीठों के सम्मुख स्वर्ण निर्मित चौकियाँ रख दी गईं हैं।

मनोहर आसनों पर मध्य में श्रीकृष्ण एवं बलराम भैया बैठे हैं । उनके सम्मुख श्रीदाम तथा उसके दक्षिण में सुबल । श्रीदाम के बाम भाग में मधुमंगल, फिर वरूथप, तोक, भद्र, सुवाहु, किंकिणी, दाम, अनुदाम और असंख्य सखा श्रीकृष्ण को घेर कर बैठे हैं । यद्यपि कुछ सखा श्रीकृष्ण के पृष्टदेश की ओर भी हैं परन्तु फिर भी प्रत्येक सखा को यही प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के पास सर्वथा उनके मुख के सम्मुख मैं ही हूँ । किसी को तो यह भी भान होता है कि बलदाऊ भैया उठकर उसके स्थान पर श्रीकृष्ण के सम्मुख आ गये हैं और वह बलरामजी के स्थान पर ठीक श्रीकृष्ण के पार्श्व में बैठा है।

अब भोजन प्रारम्भ होता है। सखियाँ, दासियाँ एवं स्वयं नन्दरानी परोसने का काम कर रही हैं । रानी भीतर बैठी हुई स्वर्ण तश्तरियों एवं कटोरों में सामान सजाकर परात में भर देती हैं । सखियाँ बाहर ले जाकर

परोसती हैं । श्रीकृष्ण मंजुलीला की ओर प्यार भरा संकेत करते हैं । मंजुलीला मेवा एवं केसर से सिक्त चन्द्रवर्णी पायस की कटोरी रानी के अधरों से छुलाती हैं और तब श्रीकृष्ण को परोसने जाती हैं । मधुमंगल इसे देख लेता है । वह संकेत से श्रीकृष्ण की ओर देखकर विलक्षण ढंग से हास्य विनोद करता है । देवी प्रसादम्' देवी प्रसादम्' कह करके वह जैसे ही बोलने लगता है श्रीकृष्ण उसका मुख लड्डू मिष्ठान्न से भर देते हैं । श्रीकृष्ण नवनीत-धवल, मलाई का लड्डू खाते-खाते नयन कोर से रानी की ओर दृष्टिपात करते हैं और मधुमंगल वह लड्डू यह कहकर झपट लेता है - "तुम मात्र चन्द्र-मुखदर्शन से ही बुभुक्षा शान्त करो, लड्डू मैं खा लेता हूँ।" सखागणों के साथ मुसकाते चपल बाल क्रीड़ा करते श्रीकृष्ण की शोभा अत्यन्त प्रेममय सुन्दर हो जाती है। माता यशोदा श्रीकृष्ण की थाली के सम्मुख आसन लगा लेती हैं और तर्जनी द्वारा प्रत्येक पदार्थ के गुण एवं स्वाद का वर्णन कर-करके श्रीकृष्ण को तृप्तिपूर्वक भोजन करने को उत्साहित करती हैं।

वे कहती हैं - "यह द्रव्य अत्यन्त सुन्दर है, यह बहुत सुमिष्ट है, यह अत्यन्त मनोहर है । कृष्ण, इसे तो अवश्य चखो।" परन्तु श्रीकृष्ण तो जिसे मैया अनुमोदन करती है एवं खाने का आग्रह करती है, वह पदार्थ सखाओं की थाली में डाल देते हैं ।

मधुमंगल माता यशोदा को कहता है "माता ! कृष्ण को तो तुम मात्र स्तनपान कराओ और आलिंगन दान करो - यह तो बस इतने से ही मोटा हो जायेगा । वह तो अति अल्प भोजी ही है । और बलराम रोहिणी मैया के यहाँ से, एवं ये सभी सखा अपने-अपने घरों से पूरे छककर, खाकर आये हैं । इन्हें तनिक भी और खिलाने की आवश्यकता नहीं है । माँ ! मात्र भूखा ब्राह्मण तो मैं ही हूँ । अतः सम्पूर्ण भोजन जो भी तेरे घर बना है, वह सभी तू निस्संकोच मेरी थाली में डाल सकती है। मैं सब खा जाऊँगा । एक कण भी उच्छिष्ट नहीं छोड़ूँगा । हाँ ! तुम, रोहिणी और नन्दबाबा नारायण मन्दिर से तुलसी प्रसाद ले लेना । ब्राह्मण भोजन का फल भी तुम्हें मिलेगा और निराहार व्रत का पुण्य भी । इससे अधिक और तुम्हें चाहिये भी क्या ? शीघ्र करो माँ ! जो कुछ निर्मित है त्वरापूर्वक सब ले आओ।

"अरी माता ! ये सुबल और तोक सिक्त पदार्थ अति अरुचि से खाते हैं, इन्हें तन्दुल और शाक, दाल दे सकती हो । घृत-सिक्त पायस आदि सभी पदार्थ मुझे ही मुझे परोसो ।"

मधुमंगल तृष्णातुर इस प्रकार जीभ में स्वाद ले-लेकर अँगुली चाटता है कि श्रीकृष्ण बलराम एवं अन्य सभी सखा हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं । श्रीकृष्ण एवं सखा अपनी थाली के सब मिष्ठान्न उसकी थाली में डाल देते हैं। वह कहता है - "निस्संकोच डालो - दुग्ध रचित, घृत पक्व, अग्नि संस्कारित कोई रसमय पदार्थ उच्छिष्ट कभी होता ही नहीं ।" और ब्राह्मण की जठराग्नि सर्वभक्षी है । वह अपवित्र होती ही नहीं ।" मधुमंगल अपनी बाम जाँघ पर ताल ठोककर कहता है - "हे सखा ! जब तक तुम तिरछे तीखे नयनों से देवी-मुख दर्शन करो, तब तक मैं सब खालूँगा।" यह कहकर दीर्घ ग्रास लेता हुआ "और पायस दो, और दधि दो, सिखरन, पंचामृत एवं नवनीत खूब दो, श्रीकण्ड कर्पूर केलि (रबड़ी), मलाई, बरफी के लड्डू और दो" माँगता हुआ भोजन पर टूट पड़ता है । मैया पायस परोसती तो वह सिखरन, पंचामृत, नवनीत चट कर जाता है ।

ये सब सामग्री परोसी जाती है तब तक वह 'पायस-पायस' की रट लगाता है । श्रीराधा एवं सखियाँ श्रीकृष्ण का हँसता और प्रसन्नता से नाचता मुख दर्शन करके आनन्द में निमग्न हो रही हैं ।

अनन्तर सब सखाओं के सहित श्रीकृष्ण की, मञ्जुलीलामंजरी मुखारी कराती हैं । श्रीराधा स्वयं अपने हाथों प्रियतम के लिये ताम्बूल लगाती हैं । कुन्दवल्ली को मंजुलीला इशारा करती है, कुन्दवल्ली श्रीकृष्ण के मुख में अपने हाथ से दो पान की गिलौरी देती है, फिर एक वापस ले लेती है । मधुमंगल ही-ही हँसता है-संस्कृत में बोलता है -**"देवी प्रसादम् देवतार्थं, देव-प्रसादं देव्यर्थम् ।"** जब ललिता मधुमंगल को ताम्बूल देने लगती है तो वह कहता है **-"तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी बालोऽहं । मदर्थे इदं ताम्बूलादि श्रृंगार-भोग सामग्री सर्वथा वर्जनीयः। विनिमये यदि लड्डूकं मोदकं देहि तदा सर्वे पूर्णानन्देन ग्रहणीयः।** नयनों से एक बार पुनः राधा किशोरी पर प्रेमपूर्ण दृष्टि निक्षेप कर श्रीकृष्ण विश्रामागार की ओर चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण के दृष्टि से ओझल होते ही सभी सखियाँ पूर्णतया अनमनी हो जाती हैं। श्रीराधा किशोरी में ऐसी व्याकुलता सृष्ट होती है कि मंजुलीला उन्हें रोहिणी एवं कुन्दवल्ली के आग्रह से विश्रामागार के सम्मुख के प्रकोष्ठ में ले जाती हैं, इस प्रकोष्ट में एक ऐसी विशाल आरसी है जिस पर सामने के विश्रामागार में विश्राम करते व्यक्ति का चित्र ठीक सम्मुख ही दिखने लगता है । रानी ओट में बिछे स्वर्ण पलंग पर विश्राम करती हैं और सम्मुख कक्ष में शयन करते श्रीकृष्ण उसे प्रत्यक्ष दिखते

रहते हैं । राधा के प्राणों में प्रियतम दर्शन से अतिशय प्रसन्नता होती है । यही दशा नन्दनन्दन की है । उन्हें भी राधारानी के मुख का दर्शन अपने कक्ष में लगी विशाल आरसी में हो रहा है । इधर गायें नन्दनन्दन के सान्निध्य को प्राप्त करने हम्मारव करने लगती हैं । सखागण भी श्रीकृष्ण को वन प्रस्थान के लिये प्रेरित कर रहे हैं । अत: श्रीकृष्ण को बनगमन करने को उठना ही पड़ता है ।

यह नन्दग्राम शकटाकार बसा है । कहीं-कहीं गोमय के गिरि श्रृंग बने हैं। गोष्ठ की गोशालाओं में सहस्रों गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप-गुण-शील का कीर्त्तन करती कार्यरत हैं ।

एक झुण्ड गाता है - अरी, यो कान्हर कारोरी

दूसरा यूथ गाता है - नहीं यो व्रज उजियारो री

फिर समवेत सभी गाती हैं-सात बरस के साँवरिया ने गिरिवर धार्यौरी

एक झुण्ड पुन: - अरी प्राणन सौं प्यारो री

दूसरा झुण्ड - अरी या पै सरवस वारोरी

समवेत - सात बरस के साँवरिया ने गिरिवर धार्यौरी

गोपगण वत्सों को गौओं से पृथक् करने में असमर्थ हो रहे हैं। गौशालाओं से श्वेत गौएँ नदी की तरह उफनती निकल रही हैं । श्रीकृष्ण को सम्मुख पाकर वत्स एवं गौएँ रुक जाती हैं । सभी हम्मारव करके श्रीकृष्ण के प्रति अपना प्रेम मंतव्य प्रकट कर रही हैं ।

श्रीकृष्ण वनगमन के समय जहाँ-जहाँ अपने पैर रखते हैं - वहीं वहीं पृथ्वी हर्षोत्फुल्ला हुई सुकोमल तृण विकास के रूप में अपना रोमांच प्रकट कर रही हैं । श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे सम्पूर्ण ब्रजमण्डल के लोग चल रहे हैं । यशोदारानी तो अपने वन जाते पुत्र को देख व्याकुल है। श्रीव्रजराज, उपनन्द, संनन्द आदि गोप श्रीकृष्ण को वन जाता हुआ देख नीरव, निस्पंद और निस्तब्ध हो गये हैं । सभी एक टक अपने प्राण प्रिय लाला की ओर देख रहे हैं ।

मंगला, भद्रा, श्यामला, पाली, शैव्या एवं चन्द्रावली आदि सभी गोपांगनाएँ अपने-अपने भवनों के मुख्य द्वारों पर खड़ी निर्निमेष नयनों से अपने प्राणवल्लभ को देख रही हैं । मैया यशोदा रानी को एवं सखियों को भोजन करने को कहती हैं परन्तु वे सभी कहती हैं कि अपरान्ह में सूर्य पूजनोपरान्त ही भोजन करेंगी । मैया बहुत सारा भोजन उनके साथ बांध देती हैं और

नान्दीमुखी कुन्दलता को उन्हें वृषभानुभवन तक पहुँचा आने की अभ्यर्थना करती हैं ।

श्यामसुन्दर ने जिस थाली में भेजन किया था, सखियाँ उसी थाली को उठा लाती हैं। इन सभी ने बहुत ही चतुराई से श्रीकृष्ण की भोजनोपरान्त की थाली में मैया द्वारा भेजी सभी मिठाइयाँ सजा सजाकर रख ली हैं तथा सखियों सहित रानी प्रियतम के अधरामृत का प्रसाद लेती हैं । शीघ्रता से वे प्रियतम द्वारा चबाया पान एवं पीक से संयुक्तकर बहुत से पान तय्यार करती हैं एवं परस्पर बाँट लेती हैं । रानी को विदा करती मैया रानी की अँगुली में धनिष्ठा द्वारा मंगायी अँगूठी यह कहकर पहना देती हैं कि "बेटी ! मेरा यह आशीर्वाद अस्वीकार मत करना । मैनें इसे कृष्ण के लिये बनायी थी पर उसे कुछ ढीली होने से वह बार-बार निकाल फेंकता है आज प्रात: तेरी अंगुली देखकर यही अनुमान हुआ कि यह तेरे ठीक बैठेगी ।"

"मेरी लाडिली ! माँ के इस आशीर्वाद को तू ग्रहण कर ले ।" रानी सिर झुका लेती है । मैया के चरणों में गिरकर प्रणाम करती हैं, मैया रानी को हृदय से लगा लेती हैं । मैया की आँखों में अश्रु बहने लगते है । वे रानी की ठोडी पकड़कर चूमती हैं तथा कहती हैं - "बेटी तुझे देखकर प्राय: मुझे भ्रम हो जाता है कि सुबल कहीं कृष्ण को ही साड़ी पहनाकर खेल तो नहीं कर रहा है । फिर पास आने पर तेरे गोरे रंग को देख पहचान पाती हूँ, आह, विधाता ने तुम दोनों के मुख को सर्वथा एक सा ही निर्माण किया है । रानी मैया की बात सुन लजा जाती हैं ।

वृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के बिम्बारुण अधरों पर विराजित वेणु की महामोहन स्वरलहरी से, सुबल श्रीदामादि, गोपशिशुओं के कण्ठ से अपने सखा के सुयश की सुमधुर तानों से सम्पूर्ण व्रजमण्डल मुखरित हो रहा है ।

अहो, जननी यशोदा का प्रेमावेश तो देखो। वे पुकार रही हैं -बलराम ! बेटे ! तू नीलमणि के सदा आगे रहना । हे सुभद्र, हे मंडलीभद्र, बच्चों ! मैं इस सुकुमार बालक का सब उत्तरदायित्व तुम्हें दे रही हूँ । हे श्रीदाम ! हे विजय ! हे जय ! तुम इसे कभी अकेला मत छोड़ना । हे वत्स मधुमंगल ! यह श्रीकृष्ण जो भी चंचलता करे, मुझे अवश्य बता देना । मैं तुम्हें भरपेट नवनीत दूंगी । अरे । सुबल तू मेरे लाल के पीछे हो जा । श्रीदाम, ओ दाम, सुदाम, तुम तीनों इसके सदा पार्श्व में रहना । देखो ! शिशुओ तुम इसे

चतुर्दिक आवृत करके ही चलना । यह सब कहते यशोदा के नेत्र निरन्तर झर-झर बरसते रहते हैं ।

राम ! प्रागस्य पश्चाद्भव सुबल ! युवां श्रीलदामन् ! सुदामन्
दो पार्श्वस्थौ भवेतं दिशि विदिशि परे सन्तु चात्मीय बन्धो: ।
इत्थं हस्ते विधृत्य प्रतिशिशु दिशती तत्र कृष्णस्य माता
तत्तत्कर्माधिकारश्रियमपि ददती नेत्र नीरैरसिक्ता ।।

बस, इससे अधिक वाणी की सामर्थ्य नहीं जो कह सके ।

मैया अंचल पसारकर देवी-देवता मनाने लगती हैं । हे नृसिंह ! प्रभो ! मेरे बालक की रक्षा कीजियेगा । हे पृथ्वी ! हे आकाश ! हे अरण्य ! हे दिक्पालों ! तुम सभी मेरे पुत्र के लिये शुभदायक रहना । श्री यशोदा मैया इसी प्रकार की भावना प्रत्येक गोप शिशु के लिये भी कर रही हैं ।

प्रियतम श्यामसुन्दर का पीताम्बर जो कुञ्ज से रानी पहनकर चली आयी थी, मंजुलीला उसे सुबल को लौटाती हैं परन्तु यह क्रिया वे श्रीकृष्ण को दिखाकर उन पर ऐसा कटाक्ष फेंक कर करती हैं, जिससे रानी एवं प्रियतम दोनो लजा जाते हैं । गोचारण के लिये वनगमन को समुत्सुक श्रीकृष्ण प्रिया को सुगुप्त संदेश देने के लिये मंजुलीला को पत्र प्रदान करते हैं और मंजलीला भी प्रिया का संदेश उन्हें देती हैं ।

अब प्रियतम असंख्य सखाओं सहित हँसते-खेलते गोचारण को जा रहे हैं। किशोरी उनके पीछे अपनी सखियों सहित एक ही पथ में कुछ दूर जाती हैं। प्रियतम बार-बार मुड़कर प्रिया की ओर देखते हैं। जब श्रीकृष्ण प्रिया की ओर ताकते हैं मंजुलीलाजी प्रिया का घूँघट किसी न किसी मिस से उठा देती हैं और रानी को वन अथवा ब्रजशोभा दिखाने के मिस प्रियतम से आँखें चार करवा देती हैं । इस प्रकार वे दोनों को अतिशय संतुष्ट करके उनकी आदर तथा स्नेह भाजन होती हैं । किशोरी की आँखें सजल हो उठती हैं । परस्पर दोनों का हृदय अपने भावों का आदान-प्रदान करता विह्वल हो उठता है। इन गुप्त संकेतों द्वारा उन दोनो के अपने -अपने प्रेम भावों के निवेदन को मात्र सखियाँ ही जान पाती हैं और कोई अनुमान भी नहीं कर सकता है । नन्दावास से चलकर किशोरी वनपथ की ओर अग्रसर होने लगीं । इस समय किशोरी के नेत्रों में प्रियतम की छवि भरी रहती है । उन्हें सम्पूर्ण राजमार्ग

ही कृष्णमय प्रतीत हो रहा है । अति कठिनता से वे पथ को पहचान भी पा रही हैं । अवश्य ही ललिता विशाखा आदि उन्हें संभालकर ले चलती हैं जिससे कहीं कोई बाधा नहीं आ पावे । रानी घर पर आकर धम्म से अपने बिछोनों पर गिर पड़ती हैं । ललिता रानी के सिर को अपनी गोद में ले लेती हैं और पंखा झलने लगती हैं । अवश्य ही किशोरी के मन में क्या-क्या विचार आ रहे हैं इसे कोई नहीं जान पाता ।

सखियाँ सूर्य पूजा की सामग्रियाँ प्रस्तुत करने में संलग्न हैं । मंजुलीला किशोरी के लिये पूजोचित पवित्र रेशमी वस्त्र और वैसे ही अलंकार और श्रृंगार सामग्री निकालकर ललिता को दे रही हैं ।

वंशीध्वनि एवं वनगमन

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरं ।
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन्वेधसम् ।
औत्सुक्या बलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्र माघूर्णयन् ।
भिन्दन्नण्डकटाह भित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ।।
(श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु)

{यह नन्दनन्दन की वंशीध्वनि वृन्दावन को ही झंकृत करके नहीं रह गयी, अन्तरिक्ष को भी आत्मसात् करने ऊपर उठी, पाताल को प्रकम्पित करने नीचे चली गयी । उधर तो मेघ समूह सहसा रुद्ध हो गये । स्वर्गायक तुम्बरु की दशा विचित्र हो गयी । आश्चर्य में निमग्न विस्फारित नेत्रों से बारंबार वृन्दावन की ओर झाँककर वह इस उन्मद नादका अनुसंधान पाना चाहता था। सनक-सनन्दन प्रभृति ऋषिवर्ग का चिर अभ्यस्त ध्यान टूट गया । विक्षिप्त चित्त हुए वे इस मधुर रस में डूबने उतराने लगे । विधाता के आश्चर्य का भी पार नहीं और उधर दानवेन्द्र बलि की उत्सुकता की सीमा नहीं । चिरशान्त स्वभाव बलि आज अतिशय चंचल हो उठे । भोगीन्द्र अनन्तदेव भी आज घूर्णित होने लगे । समस्त ब्रह्माण्ड को भेदन करती यह ध्वनि सर्वत्र परिव्याप्त हो गयी । सब ओर रस सिन्धु उमड़ चला ।}

इस अमृत पूर का प्रवाह बहाने वाले नन्दनन्दन को इस वंशीवादन की शिक्षा कहाँ कब किससे मिली, यह किसी ने भी नहीं जाना । व्रजेश्वर की आज्ञा से आज गौओं का सुन्दर श्रृंगार हुआ है । सभी सिर उठाये शान्त होकर नन्दनन्दन लाड़िले की प्रतीक्षा कर रही हैं । श्रीकृष्णचन्द्र भी आ ही पहुँचे । एक हाथ में पितृ प्रदत्त लकुट और दूसरे में वंशी । देखो वे कैसी मधुर ललित चाल से आ रहे हैं ।

'उन पर दृष्टि पड़ते ही गौओं में जो आनन्द की लहरों पर लहरें परिलक्षित हो रही हैं उसे देखकर समस्त ब्रजमण्डल अवाक् है । कूदने के अतिरिक्त इन गायों के पास अन्य तो कोई साधन नहीं, जो अपने आनन्द को व्यक्त कर सकें । इसलिये वे हम्मारव करती कूदने लगीं। परन्तु इनके कूदने, चौकड़ी भरने में भी उन्माद एवं उद्दामता नहीं है । मानो वे विलक्षण नृत्य कर रही हों इस प्रकार सर्वथा किसी को भी क्षति नहीं करती वे अद्भुत रूप से अपनी मात्र प्रसन्नता ही व्यक्त कर रही हैं । कुछ रक्षक गोप उन्हें संयत करने की चेष्टा कर रहे हैं, पर सब व्यर्थ । हाँ, ज्यों ही नीलमणि उनके प्राणधन उनके मध्य आकर खड़े हुए, ज्यों ही उन्होने अपना वंशीविभूषित हाथ उठाया, तब तो प्रत्येक गौ जहाँ की तहाँ शान्त हो गयी। अपने प्राणवल्लभ गोपाल की वे कभी भी रंचकमात्र इच्छा की भी अवज्ञा नहीं करेंगी – सभी गोधन इसका प्रमाण दे रहा था । इस दृष्य को देखकर आनन्द विह्वल सभी ब्रजवासी समवेत स्वर से पुकार उठे – "गोपाल नन्द के लाल की जय हो।"

अब एक विलक्षण आश्चर्य घटित होता है, श्रीकृष्ण मात्र आधी घड़ी में ही महर्षि शण्डिल्य से लेकर शत सहस्र ब्राह्मणों के एवं असंख्य वयोवद्ध गोप गोपियों के चरणों में प्रणिपात कर लेते हैं । सभी स्पष्ट अनुभव करते हैं यशोदा का नीलमणि आया है, उनके चरणों में सिर रखने को । उन्होंने उसको गले से लगाया है, मस्तक पर तिलक किया है, सिर सूँघा हैं, निर्मिमेष नयनों से रुद्धवाणी से भी आशीर्वाद के वचन फूट पड़े हैं – "चिरजीवी रहो, सुख में फूलो-फलो ।"

प्रत्येक ब्रजकिशोरी तरुणी अनुभव कर रही है – अति सगुप्त न जाने किस पथ से वे उसके पास एकान्त में मुसकाते पहुँच गये हैं; एक मधुर मुसकान, तिरछी चितवन से प्रेमभरी एक कटाक्ष उन्होंने उस पर फैंकी है, उसके अवयव निस्पन्द हो गये हैं और प्राण निर्मिमेष नयनों की राह उनके

साथ ही वन प्रदेश की ओर चले गये हैं, प्राण वियोग भला कैसे सह पावेंगे । जो मधुर प्रेम भाव की शत सहस्र मन्दाकिनी उस समय प्रत्येक गोपी के उरस्थल पर उठ रही है, उसे चित्रित करने की सामर्थ्य साक्षात् देवी सरस्वती में भी नहीं है ।

सखागण समवेत श्रृंगध्वनि कर उठते हैं । ब्रज पुरन्ध्रियाँ मंगलगान कर रही हैं । जननी एवं व्रजेश को किसी अचिन्त्य शक्ति ने ही प्रकृतिस्थ कर रखा है, नहीं तो जैसी उनकी अपने पुत्र को वनगमन के लिये बिदा देते समय की दशा है उससे तो गोचारण आज सर्वथा स्थगित ही हो जाना चाहिये था ।

वृन्दारण्य के कण-कण में यह भावना मानो प्रतिध्वनित हो उठती है - "वनाधिदेवी ! माधव आ रहे हैं । उल्लास युक्त हो जाओ । अपने समग्र रूप, गुण का प्रकाश करो ।" लो ! प्राणवल्लभ नीलमणि के श्रीअंगो के सौरभ पान से मदान्ध हुए भ्रमरों का यूथ गुन-गुनरव करता उनके चतुर्दिक मँडराने लगा। नीलमणि ने इस गुंजन का ऐसा अनुकरण किया है कि अग्रज बलरामजी भी विस्मित हो उठे हैं। भ्रमरों की इतनी सफल और सरस अनुकृति देखकर स्वयं भ्रमर दल चकित हो बोलना स्थगित कर देता है । सखागण "वाह रे कन्हैया ! वाह रे कन्नू भैया !" कह कहकर साधुवाद का मंजुघोष कर रहे हैं।

लो, भ्रमरों की अनुकृति स्थगित हुई तो कलहंसों का दल दृष्टि में आ गया । नीलमणि हंसकुल के अति समीप चले गये । और उनके कूजन में अब उनका स्वर मिलने लगा ।

उन हंसों के नैसर्गिक सुन्दर रव में और नीलमणि की अनुकृति में आश्चर्यमयी एकता ही नहीं हो उठी अपितु इस अद्भुत नव किशोर नर मराल का स्वर इतना चमत्कारिक सरस है कि वराट-वराटी अपनी काकली स्थगित कर देते हैं । और अब उनकी चंचल दृष्ट को आकर्षित कर लिया मयूरों ने। अतिशय शीघ्रता से अपने पीताम्बर के उत्तरीय को उन्होंने हाथों के सहारे पीछे से फैलाकर ऐसा बना लिया मानो नृत्य-परायण अभिनव मयूर का विस्तारित पीताभ पुच्छ हो । तथा यह हो जाने पर देखने ही योग्य होता है उस मयूर दल के तालबन्ध पर उनके सम्मुख ही नील सुन्दर का अनुकरण नृत्य ! उनके महामरकत-श्यामल श्री अंगों की विचित्र भंगिमायें देख-देखकर वे असंख्य गोपाल गोपसखागण उच्च कण्ठ स्वर से हँसने लगते हैं । उनकी

वह उन्मुक्त हँसी गिरि परिसर में सर्वत्र गूँज उठती है । मयूर दल को भी संकोच होने लगता है । पुच्छ संकुचित कर, नृत्य का विरामकर वे देखने लगते हैं श्रीकृष्णचन्द्र की ओर । उन्हें सचमुच ही यही अनुभूति होती है कि ऐसा सुन्दर नृत्य तो वे कभी भी नहीं कर पावेंगे ।

और लो वनाधिदेवी ने अपने आपको ऐसी सज्जा से श्रृंगारित किया है कि आज सौन्दर्य की अधिष्ठातृ साक्षात् लक्ष्मीजी भी चकित हैं । विमान चारी देववर्ग भी इस सौन्दर्य को देखकर स्तब्ध है । नन्दन कानन तो इस सौन्दर्य के सम्मुख कूड़ेदानी में फेंकने लायक हो गया है । समीर उल्लसित होकर सर्वत्र संदेश प्रसरित कर रहा है :- "हे लतागणों । सचेतन होओ । हे तरुगण विकसित होओ ! हे मृगगण, क्रीड़ा करो, हे कोकिलगण ! तुम लोग भ्रमर दल के साथ गायन करो । हे शुक पक्षीवृन्द ! तुम लोग मधुर पदावली पाठ करो । हे स्थावर जंगम तत्वों ! आनन्दित होओ ! प्रियतम प्राणवल्लभ सभी को सुख देने वन में आ रहे हैं । लो देखो ! उनका वंशीनिनाद गूँज उठा । ऊपर आकाश का दृष्य भी देखने योग्य हो गया है । सुर समुदाय की बात तो दूर, हंसवाहन चतुर्मुख ब्रह्माजी भी प्रेम विकारग्रस्त हो उठे हैं ।

अष्टाभिः श्रुतिपुटकैर्नववैणवकाकलीं कलयन् ।
शतधृतिरपि धृतिमुक्तो मराल पृष्ठे मुहुर्लुठति ।।

अपने आठ कर्ण पुटों के द्वारा उस नवीन मधुरास्फुट वेणुध्वनिका रस-पान करते हुए ब्रह्मा विभोर होने लगते, उनका धैर्य छूट जाता तथा वे वहीं हंस के पृष्ठ देश पर प्रेम विवश हुए बारंबार लौटने लगते और सुरेन्द्र के सहस्र नेत्रों से अश्रुबिन्दु झरने लगते । सरलमति गोप सखा आश्चर्य चकित होकर देखते। गगन मेघशून्य है, फिर भी बूँदें गिर रही हैं । शीतल सुखद वृष्टि हो रही है, वन, प्रान्तर आर्द्र होते जा रहे हैं । वृन्दावन की भूमि किसी अभिनव वर्षाधारा से सिक्त हो रही है । इस वेणुध्वनि से वृन्दाकानन में स्थावर-जंगमों का स्वभाव वैपरीत्य तो अनिवार्य घटना है ।

द्रवति शिखर वृन्देऽचञ्चले वेणुनादैर्दिशिदिशि विसरन्ती निर्झराप:समीक्ष्य ।

तृषित खग मृगाली गन्तुमुक्ता जड़ा तैः स्वयमपि सविधाप्ता नैव पातुंसमर्था।

(गोविन्द लीलामृत महाकाव्य)

{विणुनाद का स्पर्श पाते ही स्थिर पर्वत श्रेणियों के शिखर समूह द्रवित हो जाते हैं, पाषाण तरल बनकर चारों ओर बह चलते हैं, अनेक निर्झरों का सृजन हो जाता है । उन्हें देखकर तृषित विहंगम कुल, मृगयूथ पीने के लिये उत्कण्ठित हो जाते हैं, चाहते हैं कि दौड़कर जल पीने जा पहुँचे; किन्तु उनके अंग अवश हो जाते हैं, उनमें एक विचित्र सुखमयी जडिमा आ जाती है तथा स्वयं निकट आयी हुई उस वारिधारा का पान करने की उनकी सामर्थ्य भी समाप्त हो जाती है।

वंशीनादैः सरसि पयसि प्रापिते ग्रावधर्मम्
हंसीः संदानित पदयुगाः स्तम्भितांगी रिरंसूः ।
आसन्नीशाः स्वयमपि जड़ा बद्धपादा न गन्तुं
ताभ्यो दातुं न विसशकलं नापि भोक्तुं मराला : ।।

बंशीनाद का चमत्कारी प्रभाव सरोवर के जल को जमाकर प्रस्तर का रूप दे देता है । सरोवर में संतरण करते हुए हंसिनी यूथ के पैर भी जमे हुए जल के संपर्क में आकर बँध जाते हैं । साथ ही वे ध्वनि का मधुपान करके स्वयं भी अपने समस्त अंगों से निश्चल हो जातीं हैं। यही दशा हंसकुल की है। धन होकर प्रस्तर रूप में परिणत अपनी हंसिनी को अपना प्यार समर्पित करने की वासना लिये स्वयं भोजन करने के उद्देश्य से चञ्चुपुटों में मृणालखण्ड धारण किये वह मराल कुल भी जहाँ का तहाँ रुद्ध है । न तो वह मराली को मृणालदान कर पाता है और न ही स्वयं भक्षण कर पाता है ।

अतः आज अटवी में प्रवेश करने के कुछ ही काल पश्चात् प्रियतम नीलम ने वंशी निनाद किया । जैसे विरहरूप दावानल से मूर्छित प्रिय अटवी को चैतन्य करने के लिये अमृत वर्षा कर रहे हों । यह अमृत वर्षा वृभभानुपुर में विश्रान्त अपने कक्ष में थकी लेटी किशोरी रानी के कानों को भी रस पीयूष से भर देती है । मानो अपनी प्रिया को आह्वान करने का

मंगलाचरण पाठ हो रहा हो, उनकी अग्रिम लीलाओं की चिर सहचरी वंशी ध्वनि सर्वत्र प्रसरित हो उठी ।

और कदाचित् वन विहार के इस रसमय आवेश में नीलमणि आत्म विस्तृत हो गये । उनके वंशीनिनाद के उन्मादी सुख में डूबकर गोपसखागण भी जडिमा भावग्रस्त हुए अपनी सुध-बुध खो बैठे । गायें भी जो पूर्णतया स्वतंत्र होकर दूर चली गयी थीं, वे भी जड़ हो गयी थीं । उनके मुख का अर्धचर्वित तृणग्रास वहीं का वहीं रह गया था । वे अपने प्राणों का सम्पूर्ण वेग लगाकर आना चाहती थीं अपने नित्यपालक वेणुवादक के पास । परन्तु ऐसी विलक्षण सच्चिन्मयी जड़िमा उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी कि उनके अंग अवश हुए हिल ही नहीं रहे थे ।

नीलमणि अकस्मात् जाग से उठते हैं । यह क्या कर दिया उन्होने । वंशीध्वनि तत्क्षण स्थगित हो गयी । उसे अपने कमर में उन्होंने खौंस ली । उनके नित्य नव सुन्दर मुखारविन्द पर एक विचित्र सी व्याकुलता परिलक्षित होने लगी । अरे सुबल ! ओ तोक, अरे मणिभद्र, भाई सुदाम ! ओ श्रीदाम ! अरे, तुम्हें क्या हो गया ? उठो, तो भाई । क्या सभी सो गये ? सखाओं के कर्णपुटों में उनकी यह अतिशय मधुर जलद ध्वनि अनिर्वचनीय पीयूष स्रोत का सृजन कर देती है, इसे कौन बतावे ? सभी सखागण जाग उठे से गायों को स्मरण करते हैं । उनके मुखारविन्द पर एक विचित्र सी व्याकुलता परिलक्षित होती है - अरे भैया ओ ! देखो तो सही अपनी गायें कहाँ से कहाँ चली गयीं ? और इस कन्नू की वंशी ने उन्हें भी कहीं दूर सुला नहीं दिया हो ?" इन सखाओं के नेत्रों में किञ्चित् भी चिन्ता, भय व्याप्त हो जाये - यह उनके प्राणसखा को कहाँ स्वीकार है । दूसरे ही क्षण नील सुन्दर के बिम्बारुण अधर-पल्लव पर वह अपूर्व स्मिति व्यक्त हो जाती है । वे दौड़कर निकटवर्ती कदम्ब की ऊँची शाखा पर चढ़ जाते हैं और फिर गूँज उठता है उनका मेघ गंभीर नाद-

पिशंगि मणिकस्तनि प्रणतश्रृंगिपिंगेक्षणे,
मृदंगमुखि धूमले शबलि हंसि वंशिप्रिये ।
इति स्वसुरभीकुलं मुहुरुदीर्ण ही ही
ध्वनिर्विदूरगतमाह्वयन् हरति हन्त चित्तं हरिः ।।
मेघ गंभीरयावाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ।
क्वचिदाह्वयत्ति प्रीत्या गो-गोपाल मनोज्ञया ।।

अरी पिशंगि, ओ मणिकस्तनि, री प्रणतश्रृंगि, ओ पिंगेक्षणे, अरी मृदंगमुखी, हे धूमले, अहो हंसि, री वंशीप्रिये, आजा, आजारी ! हीओ ! हीओ ! इस प्रकार प्रत्येक का नाम ले लेकर, स्नेहविवश हुए वे आह्वान करने लगते हैं और अपने प्यारे नीलमणि की इस पुकार ने गायों में नवीन चेतना का मानो संचार कर दिया हो, वे एक साथ हाम्बारव करती अपने प्राणसारसर्वस्व के पास आ जाती हैं । बस, इतना सा ही तो अभिप्रेत था लीलाबिहारी को ।

अब फिर नये कौतुकों का प्रारम्भ हो गया । यह लो ! आगे से आगे सखाओं के प्रस्ताव प्रस्तुत हैं । एक ने कहा - "कन्हैया ! चकोर की बोली बोल सके तो जानूँ ।" दूसरे ने कहा - "मयूर के समान नृत्य तो मैं भी कर लूँगा, उसकी बोली बोलकर सुना ।" अनेक सखा हैं, सबकी अलग-अलग रुचि है । ये चकोर, क्रौंच, चकवा-चकवी, भारद्वाज , कोकिल, मयूर, सभी के मनोरथ पूर्ण करना है उनको ही । राशि-राशि वन-पक्षी शान्त-सुस्थिर उनकी ओर एक-टक देख रहे हैं । सभी के रव का हूबहू अनुकरण कर रहे हैं उनके ये प्राणनिधि ! और वह देखो ! वन के सघनतम अन्तर्भाग से हिंस्र-पशु व्याघ्र सिंह, विशाल अजगर भी बाहर आकर उन्मुक्त वनस्थली में अपने मनोहारी चितचोर के पास चले आये ।

उस वन के किसी चतुष्पद में हिंसा की वृत्ति न थी प्रियतम !
दिनरात परस्पर निर्भय वे सुख से घूमा करते प्रियतम !
उनमें मुनियों की दृष्टि अहो ! थी स्वतः उतर आयी प्रियतम !
मानो एकात्मभाव मन में वे लिये हुए सब थे प्रियतम !!

नीलसुन्दर के प्रति कितना स्नेहभरा है उनकी आँखों में, यह देखते ही बनता है । किन्तु बलिहारी है लीलाबिहारी की लीला की । वे तो भयभीत दौड़ लगा रहे हैं । देखो ! भय मिश्रित उनकी चीख निकल आयी है । अवश्य ही गोप सखा हँस रहे हैं । वे सभी ताली पीट-पीटकर हँसते हुए आनन्दभरी दृष्टि से इन हिंस्र पशुओं से खेल रहे हैं । तोक कृष्ण तो इस व्याघ्र की सवारी करने पर उतारू है । सुबल कन्हैया को बुला रहा है और कहता है -- "अरे भैया तूने कालिय नाग को आहत कर दिया, इस साधारण अजगर से

क्या डरता है ?" किंकणी ने अजगर का मुख खोल लिया है । वह तो बहुत ही विनोदी है - कहता है हमारे कन्हैया ने पहाड़ जैसे अजगर जिसका मुख कन्दरा के समान था, उसको मार डाला, इसका मुख तो मात्र भूमि विवर जैसा ही है । सखाओं की पुकार पर उनके प्राण सखा को तो आना ही था । इन हिंस्र जीवों में अहिंसा की नित्य प्रतिष्ठा है । निसर्ग से ही वैर सम्पन्न जन्तुओं में भी इस व्रजभूमि के प्रभाव से सदा स्नेह की सरिता उमड़ती रहती है।

इस प्रकार नये-नये कौतुक करते श्रीकृष्ण गिरि परिसर में पहुँच जाते हैं। सखाओं में तनिक भी श्रान्ति का भान नहीं हैं । अत: विश्रामका तो प्रश्न ही कहाँ है ? तो लो ! अब उनकी क्रीड़ा चली आँख मिचौनी खेल की । तरु शाखायें परस्पर जुड़कर हरित पत्रों का सुन्दर वितान कर देती हैं । इन लताओं की ओट लेकर एक दल को अरण्य में अपने को छुपाना है और दूसरे दल को उसे खोज निकालना है । सभी चाहते हैं कि इस रंगभूमि के नेता, प्रधान श्रीकृष्ण सबकी आँखों के आगे ही रहें, वे उनसे ओझल कदापि न हों। परन्तु लीला महाशक्ति तो रंगमंच में अब दूसरा दृष्य पट प्रस्तुत करने को उतावली हो रही है ।

अत: आँख मिचौनी लीला में एक दल का नेतृत्व बलदाऊ दादा संभालते हैं और दूसरा दल का नेतृत्व नीलमणि । दूसरा दल एवं नीलमणि लतावल्लरियों की ओट में जा छिपे । मात्र एकक्षण का ही यह उनका अदर्शन सखाओं के प्राणों में व्याकुलता की सीमा का उल्लंघन कर देता है । तुरन्त ही बलदाऊ भैया का दल अपने कन्हैया भैया को ढूँढ निकाल लेता है और विजय के हर्ष से सभी दल नाच उठते हैं ।

अवश्य ही अघटन घटना पटीयसी अचिन्त्य लीला महाशक्ति के विधान से ऐसा आयोजन हो जाता है कि यह एक क्षण का अन्तर्धान का कालमान श्रीराधा कुण्ड पर श्रीराधा किशोरी के दैनन्दिनी विहार की लीला-संरचना के लिये ढाई पहर की लम्बी अवधि बन जाता है । दूसरे शब्दों में यहाँ का एक क्षण वहाँ के ढाई पहर में व्यक्त हो जाता है । श्रीकृष्ण के सखागण उन्हें केवल एक क्षण के लिये अपने से पृथक अनुभव करते हैं और वहाँ राधाकुण्ड में, सूर्यपूजन की ढाई पहर की लीला संघटित हो जाती है ।

श्रीकृष्ण का राधाकुण्ड आगमन

दिन के दूसरे प्रहर में वे रहते अरण्य में थे प्रियतम !
मेरा प्यारा भाई मेरी करता सहायता था प्रियतम !
प्रेषित मैं एक पत्र करती तू भी अवश्य करना प्रियतम !
मेरे प्राणों में प्राण मिला नलिनों में लिख करके, प्रियतम !!

वनदेवी नीलमणि प्राणधन के सरोवर के सन्निकट पहुँचते ही वसन्तश्री से मण्डित होन लगी । भ्रमरगणों की सर्वत्र झंकार मानो उनकी गुणावली पाठ कर रही थी । सर्वत्र पक्षीगणों की काकली मुखरित हो उठी । तरु समूह रस क्षरित करने लगे । लता श्रेणियों ने स्वागत में पुष्पों से समग्र पथ पर आस्तरण बिछा दिया । पत्र चंचल होकर आह्वान करने लगे । मृग मृगी यूथों में तृण भक्षण को विराम देकर वंशीरव से आकृष्ट हुए अपने प्राणवल्लभ के पास चले आये । हरिणियों के चंचल नेत्रों को देखते-देखते प्रियतम नीलमणि को प्रिया किशोरी रानी की स्मृति होने लगी ।

सरोवरों में मदमत्त हुए जल पक्षियों का कलरव प्रियतम के लिये प्रिया के आभूषणों की झंकार बन गया । उत्कृष्ट परिमल तिरस्कारी सुगन्धि भरी प्रस्फुटित कमल श्री उन्हें प्रिया की हसित आननश्री की स्मृति में विसुध कर रही थी । कमलों पर बैठे भ्रमर उन्हें प्रिया के कज्जल रंजित दीर्घ नयन प्रतीत हो रहे थे । रस चूते खिले दाड़िम दंतछटा की स्मृति उद्दीपित कर रहे थे, बिम्ब अधरो की, बड़े-बड़े नारंग उनके उरोजों की स्मृति में उन्हें विसुध बना रहे थे ।

प्रियतम प्राणवल्लभ के लिये सम्पूर्ण वन प्रिया रूप हो उठा था । वे जहाँ जहाँ भी दृष्टि डालते वहीं उन्हें प्रिया ही दिखाई पड़ती । एक अद्भुत असीम व्याकुलता उनमें व्यक्त हो गयी थी । एक चम्पक वृक्ष को देखकर तो उनकी व्याकुलता और तन्मयत्ता दोनों अतिशय प्रगाढ़ हो उठी । श्रीदाम एवं सुबल दोनो वन एवं पर्वत शोभा दिखाकर उनका ध्यान हटाने की चेष्टा करते हैं - "हे सखे ! देखो हम गिरिराज गोवर्धन की तलहटी पर पहुँच गये हैं । अहा ! मणि समूहों की राशि-राशि से कैसा दिव्य प्रकाश उद्भासित हो रहा है । मणिमय आम्रवृक्ष मणिमय मुकुलों से लदे हैं । मणि मुकुलों के क्षरण से स्वर्णिम भूमि रत्नमयी प्रतीत हो रही है । अहा ! इन मणि मुकुलों पर भिन्न-भिन्न मणियों के रंग के भ्रमर गुंजन कर रहे हैं । इनका झूमना और

गुंजन करना कितना मनोरम है । इनके झंकार से तो मलयाचल की मंद समीर भी उल्लसित हो उठी है । देखो न ! इन सरोवरों के जल में गोवर्धन पर्वत की छवि ज्यों की त्यों मूर्तिमान हो रही है । मणि पर्वतों की ज्योत्स्ना लता वल्लरियों से आच्छादित घने वन के अन्त: पट से चमचम चमचमा रही है । इन मणि पर्वतों की चमक से प्रतिबिंबित इस सरोवर का जल भी विलक्षण छटा प्रकाश कर रहा है । गोवर्धन के अन्तराल से निकली यह स्वच्छ जलधारा भी कितनी शीतल-स्वच्छ और मधुर सुस्वादु है ।

परन्तु प्रियतम तो प्रिया की स्मृति में इतने तल्लीन हैं कि सुबल एवं श्रीदाम द्वारा वन शोभा वर्णन उनके कानों में प्रवेश ही नहीं कर रहा है । मयूरों का केकारव उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानों उन्हें एकाकी प्रिया से वियुक्त पाकर मयूरियाँ रुदन करती पूछ रही हों - "राधा कहाँ ? राधा कहाँ ? राधा कहाँ ?"

वे सुबल से कहते हैं - "हे सुबल ! ये हंस-हंसिनी गण मुझ एकाकी को प्रिया-विरह में दुखी देख अपनी भी प्रियाओं को सहानुभूति में त्याग कर उदास मन से कमलिनी के क्रोड़ में अपनी ग्रीवा डाल शान्त लेट गये हैं ।"

"हे सखे ! इन हरिणियों को भी मेरे प्रिया-वियोग का कितना असह्य दु:ख है , ये भी अपने प्रिय मृग को त्याग अति उदास मन से मेरी ओर कैसी दया भरी दृष्टि से निहार रही हैं। यह कृष्णा-कोकिल 'किशोरी किशोरी' कूजती हुई हे सखे ! किस प्राणों की आकुलता से इधर-उधर फुदक रही है ? इन लताओं ने मुझे प्रियाहीन जानकर वृक्षों का आलिंगन त्याग दिया है एवं ये वृक्ष भी अधोमुख विषाद में कम्पित हो होकर अपनी व्यथा प्रकट कर रहे हैं। ये भ्रमर पुष्पों का मकरन्द पान नहीं करते, ये मुझे एकाकी विषादयुक्त उदास देख प्रिया का गुणगान कर मेरा मनोरंजन करने का प्रयास कर रहे हैं। और देखो इन पुष्पलताओं की ओर तो दृष्टि पात करो - ये अपनी विकसित पुष्पावली को गिराकर मुझे निवेदन कर रही हैं कि जब प्रिया ही नहीं है तो हम कौन सा साज श्रृंगार धारण करें ? अब तो हमारी सारी सज्जा ही प्रयोजन शून्य है ।"

"हे श्रीदाम भैया ! यदि तुम मुझे जीवित और हँसता, मुसकाता देखना चाहते हो तो शीघ्र मेरी प्रिया को मेरे इस वन में आने का समाचार दे दो । सखियों सहित अपने नूपुरों की झंकार से संपूर्ण वन प्रांगण को मुखरित करतीं, अपनी अमृतमयी दृष्टि निक्षेप से इन विरहिणी वल्लरियों को

जीवनदान देतीं, अपनी मुसकान माधुरी से संपूर्ण जड़-चेतन, स्थावर-जंगम को चैतन्य प्रदान करतीं वे कब इस सरोवर को अपना विश्राम स्थल बनावेंगीं ? मैं परमाकुल चित्त मेरी प्रिया की प्रतीक्षा में रत हूँ । उनके आगमन के बिना न ही यह वन आनन्दित होगा, न ही मेरा हृदय ।"

"देखो न ! यह गोवर्धन जो अनन्त शोभा का आगार है मुझे प्रिया के बिना कितना नीरस, सौन्दर्यहीन, शुष्क दिख रहा है ।"

यह कहते-कहते वे बाह्य चेतना शून्य हो जाते हैं । श्रीदाम उन्हें धैर्य बंधवाने की चेष्टा करता कहता है कि मैं शीघ्र ही रानी को अन्वेषण कर यहीं ला रहा हूँ । सुबल कदली पत्र से उन पर व्यजन करता है । वह राधा-सरोवर का शीतल स्वच्छ जल उनके मुख पर छिड़कता है, फिर भी वे अर्धचेतन दशा में "राधा ! प्राणेश्वरी ! जीवन निधि !" कहकर पुकारने लगते हैं। वे अपने सभी आभूषणों को अपने देह से पृथक कर देते हैं ! हे मुकुट ! तुम मेरे शीर्ष को शोभित क्या करोगे, तुम्हारी कृतार्थता तो प्राणप्रिया के चरणों में झुकने पर ही है । हे मणिमालाओं ! मेरा समस्त श्रृंगार मात्र प्रिया की प्रसन्नता के ही लिये है जब वही मेरे साथ नहीं तो मैं तुम्हें धारण करके क्या करूँगा ? हे नूपुर ! हे कटि किंकिणी ! जब मेरी प्रिया आये तभी तुम मेरे अंगों को सुशोभित करना ! अभी तुम्हारी झंकार मुझे अति कर्ण कटु लगती है। हे कुंडल ! हे केयूर ! तुम सभी को मैं आकुल हृदय से बिदा कर रहा हूँ।

उन्होंने मात्र प्रिया के हाथों गुम्फित वन-माला अपने पास रखी और प्रिया की छवि प्रकाशित करने वाली गज-मुक्ता माला को धारण किये रहे । उन्होंने पीताम्बर को भी अपनी प्रिया के वर्ण का मान अपने पास रखा, शेष सभी आभूषणों को वे उतार-उतार कर चम्पावृक्ष के चरणों में रख देते हैं।

प्रियतम श्रीकृष्ण के भावों में प्रिया के विरह सें एक विलक्षण उदासीनता परिलक्षित हो रही है । उनके अन्तर्हृदय में अतिशय व्याकुलता है, परन्तु बाहर अपने सखाओं के सम्मुख लज्जा का प्रकाश भी है । यह मिश्रित भावदशा देखते ही बनती है । उनके प्राणों में मिलन की इतनी उत्कण्ठा है कि वे सचकित नेत्रों से उस पथ की ओर देखने लगते हैं जिस पथ से श्रीकिशोरी रानी नित्य राधाकुण्ड पर आती हैं । उन्हें भ्रम होने लगता है, वास्तव में ही किशोरी अशोक वृक्ष के आलवाल के समीप खड़ी है । वे हर्षोन्मत्त धीरे से सुबल को कहते हैं - "अरे सुबल ! किशोरी आ गई रे ?"

यह हृदय की भावना वाणी में आते ही उनमे पुन: घनीभूत लज्जा का आवेश हो जाता है । वे अपने भाव को गुप्त करने के प्रयास में अपने दक्षिण की ओर घने आम्र वृक्षों की कुंज में देखने लग जाते हैं । वे अपनी प्रिया के आगमन की भावना में पुन: तन्मय हो जाते हैं । दाहिनी ओर गिरिशृंगों की ओर उनकी दृष्टि केन्द्रित हो जाती है । वहाँ एक उत्तुंग शिखर पर उन्हें पुन: किशोरी अवस्थित दिखाई पड़ती है, परन्तु इस बार उन्हें यही प्रतीत होता है कि यह उनके नेत्रों का भ्रम ही है ।

वे मन ही मन अपनी प्रिया राधा को संदेश देने लगते हैं - "प्रिये ! ऋतुराज आज पुष्प वितान तान कर, पुष्पास्तरण आस्तृत कर अपनी इष्टदेवी धरा का पूजन कर रहा है । देखो ! इसने मलय सौरभयुक्त परिमल की धूप सजा रखी है । भ्रमरों के निनाद की शंखध्वनि हो रही है । कोकिल, मयूर स्तुति पाठ कर रहे हैं । किंशुक फूल रहे हैं, यह उसका दीपोत्सव नीराजन है। प्रिये ! आओ !! मैं भी तुम्हारी अर्चना करूँ । इस किंकर की अर्चना ग्रहण कर इसे कृतार्थ करो ।

हे प्रिये ! देखो अति रमणीय कुसुमों से घिरा यह सरोवर दूर-दूर तक शोभा की तरंगों में नाच रहा है । इसके चतुर्दिक असंख्य मयूर नर्त्तन कर रहे हैं । अलिदल अति प्रमत्त हो रहे हैं । हे प्रिये ! आओ इस वन श्री की शोभा निहारकर इसे धन्य भाग्य करो ।

इस प्रकार प्रिया का प्रगाढ़ चिन्तन करते-करते उन्हें ऐसा अनुभव होने लगता है कि जैसे वे ही श्रीराधा हैं और श्यामसुन्दर उन्हें त्यागकर कहीं अन्यत्र चले गये हैं । उनकी 'मैं राधा' यह अनुभूति इतनी प्रगाढ़ हो जाती है कि उन्हें सुबल ललिता अनुभव होता है । यद्यपि उनका यह मनोभाव बाहर प्रकट नहीं होता परन्तु उन्हें 'मैं राधा' की अनुभूति में सम्पूर्ण वन एवं राधा कुण्ड श्रीकृष्ण से भरा दृष्टिगोचर होता है ।

इधर किशोरी रानी के आने का काल हो चुका है । वे अपने आवास से चल पड़ती है । रास्ते में ही श्रीदाम उन्हें मिल जाता है एवं वह श्रीकृष्ण की विरहावस्था की सूचना ललिता को दे देता है। किशारी अत्यन्त तीव्र गति से कुण्ड की ओर प्रस्थान करती हैं ।

{विस्तार भय से शेष अष्ट-याम लीला इस ग्रन्थ के इस भाग में नहीं दी जा रही है । शेष प्रसंग संक्षेप में दिये जा रहे हैं । इसका कारण यही

है कि पू० गुरुदेव जब मंजुलीला भाव में रहे उस समय मैं निरी अबोध बाल्यावस्था में रहा । उस समय समझ ही परिपक्व नहीं हुई थी । जब गोरखपुर में उनसे १९४९ ई० में मिलन हुआ तब वे मंजुश्यामा भाव में परिनिष्ठित हो चुके थे । मंजुलीला भाव में रहते हुए उन्हें जो भी लीलानुभव हुआ है वह श्रीशिवभगवान फोगला के लिये लिखी लीलाओं में व्यक्त है जो बहुत ही हेर-फेर करके उन्होने व्यक्त किया है । वह लीला चरित्र 'केलिकुंज' पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुका है।

मुझे उन्होनें मंजुलीला भाव की कुछ लीलाएँ सुनायी हैं, वे आगे दी जायेंगी । इसी प्रकार सारिका भाव की लीलायें भी आगे उल्लेख की जायेगीं। ये सब लीलाएँ तीसरे भाग में ही लिखी जा पावेंगीं । जो अष्टयाम मेरे पास है, वह उनका मंजुश्यामा भाव का है अत: मंजुश्यामा भाव में शेष अष्टयाम देने का मन है । पू० बाई सावित्री के पास राधाभाव में जब वे थे तबका अष्टयाम है । यदि पू० बाई उसे प्रकट करना चाहेगी तो पाठकों के अवलोकनार्थ वह दिया जा सकता है । अभी तो संक्षेप में ही इस अष्टयाम का आनन्द लें }

अवशिष्ट अष्टयाम लीला

{ यहाँ जितने क्रमांक दिये जा रहे हैं उन सबके पृथक्-पृथक् अध्याय हैं। अब अनुमान ही कर सकते हैं कि सम्पूर्ण लीला कितनी विस्तृत है } (१) रानी राधाकुण्ड में आती हैं । प्रियतम कृष्ण कुण्ड में खड़े हैं । दोनों का प्रथमत: दृष्टि मिलन होता है फिर प्रेम जनित अथाह त्वरा लिये प्रिया-प्रियतम इस प्रकार प्रगाढ़ आलिंगन में गुँथ जाते हैं जैसे एक प्राण एवं दो तन हों । वन प्रान्त के सभी पक्षीगण शोभा देखकर मुग्ध हुए सात्विक विकारों से पूर्ण हो उठते हैं । सम्पूर्ण वन ही विलक्षण भाव-समाधि में भर जाता है । (२) प्रिया-प्रियतम के विश्राम के लिये मंजुलीला ने अत्यधिक शोभाशाली सुन्दर पुष्पकुंज निर्माण किया है, इस पुष्प मन्दिर में अतीव सुखद पुष्पाशय्या का अतीव कलात्मक कुशलता से वे मनोरमा और गुण मंजरी के सहयोग से निर्माण कर रही हैं । इस शय्या और विश्रामगृह की शोभा देखकर आँखें आश्चर्य से विस्फारित हो उठती हैं । (३) रानी एवं प्राणवल्लभ इस मंजुलीला रचित अत्यधिक शोभाशाली पुष्प मन्दिर में विश्राम करने प्रवेश करते हैं और

मंजुलीलाजी औषधि युक्त सुगन्धित जल से दोनों के चरण परात में पखार रही हैं । चरण पखारने के उपरान्त वे अपनी उन्मुक्त अति दीर्घ केशराशि से दम्पति के चरण पौछ रही हैं ।

प्रिया प्रियतम पद्‌म पर्यंक में विराजित हो जाते हैं । मंजुलीला दोनों पर चँवर डुलाती हैं । श्रीललिता के संकेत से चँवर डुलाने का कार्य गुण मंजरी को सौंपकर मंजुलीला प्रिया प्रियतम को मादक मधु पिलाने के लिये मधुपात्र लाती हैं । विलक्षण स्वादभरा मादक मधु से भरा पात्र मंजुलीलाजी ललिता को देती हैं, विशाखा भिन्न-भिन्न रत्नों के विशिष्ट आकृति के प्याले दोनों के हाथों में दे देती हैं और ललिता उन रत्न-प्यालों में मधु उडेलती हैं । प्रिया को जो मधु दिया जा रहा है उसका मरकत वर्ण है और प्रियतम को जो मधु दिया जा रहा है उसका वर्ण चम्पा के समान है । प्रिया प्रियतम परस्पर अपने हाथों पहले एक दूसरे को पिलाने का आग्रह करते हैं । प्रिया चाहती हैं प्रियतम उसके मधु पात्र को अपने अधरों से स्पर्शित कर लें एवं एक घूँट पी लें तब वे पान करें, ठीक इसी प्रकार प्रियतम चाहते हैं कि प्रिया पहले उनके पात्र को अधर संस्पर्शित करके घूँट एक पी लें तब वे पान करें । प्रिया सखियों के सम्मुख लज्जा कर रही हैं क्योंकि प्रियतम मधुपान कराते हुए उन्हें अपने अंक में बैठाना चाहते हैं और अतिशय प्यार से मधुपान कराना चाह रहे हैं । मंजुलीला तदनुसार अन्त:पट कर दे रही है । अन्तर्पट इतना झीना है कि सखियों को सारी शोभा तो दिख ही जाती है, परन्तु फिर भी प्रिया समझती हैं कि प्रियतम उन्हें एकान्त में ही मधुपान करा रहे हैं । मधुपान कराते कराते प्रियतम प्रिया के अधरों को भी अपने अधर से संस्पर्शित कर लेते हैं । इससे प्रेमजन्य ऐसी आनन्द लहर दोनों के अंगों में व्याप्त हो जाती है, जो मात्र किसी भाग्यवान् के संविद् में भले ही व्यक्त हो पावे, लेखनी में तो अंसभव ही है ।

(४) लो ! मंजुलीलाजी ने अपने पन-बट्टे में से अति सुन्दर दो ताम्बूल की गिलौरियाँ निकाली हैं और एक गिलौरी प्रिया के मुख से अर्धचर्वित करवा के प्रियतम के मुख में दे दी है और दूसरी गिलौरी को प्रियतम से अर्धचर्वित कराके प्रिया के मुख में दे रही हैं । जब मंजुलीला यह ताम्बूल प्रियतम को प्रदान करती हैं उसी समय प्रियतम अपने मुख का चर्वित ताम्बूल परम रसभावित रूप में अपने मुख से ही उनके मुख में दे देते हैं । यद्यपि

मंजुलीला बहुत ही तीक्ष्ण निषेध करती है, अतिशय लजाती हैं परन्तु प्रियतम अत्यन्त औद्धत्य-पूर्वक यह क्रिया कर लेते हैं ।

(शब्दों ने अति संक्षेप में वर्णन किये जाने के कारण इस लीला की पवित्रता, मर्यादा, सौन्दर्य एवं निराविल विशुद्ध सरसता को सर्वथा ही प्रकाशित नहीं किया है, वरं च शब्द तो लौकिकावेश और जगत की मलिन भोग क्रियाओं की ही अभिव्यंजना करते हैं पाठकों से इस दोष के लिये अनन्त चरणवन्दन पूर्वक लेखक क्षमा प्रार्थी है ।)

अब अशोक मंजरी रानी एवं प्रियतम के सम्मुख रत्नजटित पीकदानी रख देती हैं । अशोक प्रिया प्रियतम से पीक उत्सर्जित कराके अधरामृत सनी प्रिया-प्रियतम की पीक नये ताम्बूलों में संयुक्त कर इन ताम्बूलों को सभी सखियों में वितरित करती हैं ।

(५) अब सारिका सखियों को निर्दयी एवं स्वसुखरता कहती हुई अति तीक्ष्ण स्वर में उनकी भर्त्सना करने लगती हैं - उसका रोष यही है कि सखियाँ प्रिया प्रियतम की एकान्त मिलनेच्छा को अन्धी होकर अनुमान ही नहीं कर रही हैं और अपने सुख में मदमाती उन्हें घेरे खड़ी हैं । सारिका के संकेत को समझ कर तुरन्त शुक निकुंज कक्ष के बाहर आ जाता है । सभी सखियाँ एवं मंजुलीला निकुंज के बाहर आ जाती हैं ।

(६) प्रिया प्रियतम के अंगों की मिश्रित अंग गंध इतनी सौरभमयी है, उसकी लहरें सखियों को आनन्द विभोर कर देती हैं । भ्रमरों का दल इस गंध से आकृष्ट हुआ चतुर्दिक गुंजार करता है और पुष्प मन्दिर के पुष्पों पर बैठ जाता है । वह भ्रमित सा यही मान बैठता है कि पुष्प मन्दिर के पुष्पों की ही यह महक है ।

एकान्त मिलन के कारण प्रिया प्रियतम के नूपुर, कंकण, एवं करधनी अतिशय रसमय ध्वनि उत्पन्न कर रही हैं, जिसको सुनकर सखियाँ आनन्द में डूब रही हैं ।

पुष्पमन्दिर निकुंज के लता छिद्रों से प्रिया-प्रियतम की कभी किसी अंग की झाँकी सखियों को हो जाती है जिससे सखियाँ अति निहाल हो रही हैं । प्रिया-प्रियतम के चरण चिन्हों को लता छिद्रों से देख-देखकर उनकी शयन मुद्राओं का अनुमान करती हुई सखियाँ एवं मंजुलीला परस्पर रसालाप कर रही हैं । प्रिया-प्रियतम द्वारा परस्पर रस विलासरत होने पर उनके मुख से सीत्कारादि के रूप में निकली ध्वनियों को सुनकर तथा प्रीतिचिह्न अंकित

करते समय निस्सृत ध्वनियों को सुनकर सभी सखियाँ आनन्दमत्त हो रही हैं।

(७) श्रीमंजुश्यामा प्रिया-प्रियतम के विहार को विरमित हुआ जान उन्हें श्रान्त शयनरत पाकर निकुंज में प्रवेश करती हैं । मध्याह्न काल व्यतीत हो गया है । वे रानी के अंगों में विहार के कारण विकृत हुए कुंकुमादि से श्रृंगार के समय रचित चित्रों को पुनः रचित करती हैं । तिलकादि भी जो विकृत हो गये हैं उन्हें यथोचित करती हैं । वे रानी के श्रीअंगों में चतुस्सम का अनुलेपन कर रही हैं । नख क्षत एवं दंत क्षतादि के चिह्नों को गोपन कर दे रही हैं । उनके भग्न मोतियों के हार एवं रत्नहारों को पिरोकर उन्हें यथास्थन धारण करा रही हैं । श्री मंजुलीला एवं गुण मंजरी उनको इस कार्य में सहयोग दे रही हैं ।

(८) अहा, सखियाँ डलियाओं में अतिशय सुगन्धित अनेकों वर्णों के पुष्प चयन कर ले आयी हैं । श्रीमंजुलीला परम सुन्दर वैजयन्ती माला का निर्माण करती हैं, वे पुष्पों के अति सुन्दर आभूषण भी बनाती हैं देखो, प्रिया प्रियतम के सम्मुख ये सभी वन मालाएँ और आभूषण रख दिये जाते हैं । और वे परस्पर एक दूसरे का श्रृंगार करते हैं । परिहास रत प्रिया-प्रियतम सखियों का भी श्रृंगार कर देते हैं । श्रृंगार करते समय कभी वे ललिता, कभी विशाखा एवं कभी चित्रादि से ऐसा रसमय परिहास एवं रसमय स्पर्श चेष्टा कर लेते हैं जिससे आनन्द की लहरें सखियों में उमड़ने लगती हैं ।

(९) अब ललिता प्रिया के केशों को सँवारने उन्हे वेणी मुक्त कर देती हैं परन्तु प्रियतम स्वयं प्रिया की वेणी रचना करने तत्पर हो उठते हैं । वे स्वर्ण कंघी से प्रिया के केशों को सँवारते हैं । प्रिया भी प्रियतम के केशों को सँवारती हैं और उनकी वेणी रचना करती हैं । प्रिया प्रियतम के नयनों में काजल आँजते हैं और प्रियतम-प्रिया के नेत्रों को अंजन अनुरंजित कर रही हैं। लो, प्रिया-प्रियतम अब परस्पर दोनों के अधर अनुरंजित करते हैं, उरोजों में पत्रावलि रचना करते हैं । दोनो एक दूसरे के चिबुकों पर कस्तूरी से बिन्दु रचना कर रहे हैं ।

(१०) श्रृंगार समाप्त होते ही मंजुलीलाजी प्रिया प्रियतम को अनंग गुटिका, सीधु-विलासादि, रति सुखवर्धक अति सुस्वादु रसायन खिला रही हैं ।

(११) ललितादि सखियाँ अपने-अपने कुंजों से अनेक प्रकार के सरस एवं मधुर फल चयन करके लाती हैं और प्रिया प्रियतम को खिला रही हैं ।

प्रिया-प्रियतम सखियों को भी साथ-साथ खिलाने की अतिरसमयी चेष्टा करते हैं । प्रियतम ललिता विशालादि सखियों के अधरों से खाया हुआ आम्र अमृत फलादि स्वयं खा लेते हैं । इस प्रकार प्रीति वर्धन करने वाली लीलायें हो रही हैं ।

(१२) सखियाँ कुंज में से ही किसी स्थान से सुन्दर रसोई बनाकर प्रिया-प्रियतम को भोजन कराती हैं, वे सभी स्वयं भी उनका अधरामृत सना प्रसाद भोजन कर रही हैं ।

(१३) प्रिया-प्रियतम वन विहार को चलते हैं । श्रीमंजुलीला प्रिया की वीणा लेकर उनके पीछे-पीछे चल रही हैं । एकान्त स्थान में प्रिया-प्रियतम को वीणा वादन करके सुनाती हैं । प्रियतम वेणु वादन द्वारा उनका साथ देते हैं । ऐसा रसमय समा बँधता है कि उसका वर्णन असंभव है।

(१४) लो बसन्त कुञ्ज में सखियों के साथ प्रिया-प्रियतम होली खेलते हैं। मंजुलीला प्रिया को प्रियतम पर छिड़कने के लिये केसर जल से भरी पिचकारी प्रदान करती हैं ।

(१५) पावस कुंज में प्रिया-प्रियतम की झूलन लीला होती है । एक से एक मनोहर कुंज हैं, कहीं मोतियों का पूरा कुंज है जिसमें मोतियों के ही झूले लगे हैं, कही वज्रमणियों का कुंज हैं और उसमें वज्रमणि का झूला है, कोई नीलमणि का, पुखराज का, स्वर्ण कुन्दन का, रजत का कुंज है उसमें वैसे ही झूले हैं, कोई पुष्पों का कुंज है, पुष्पों के झूले हैं, कही फलों का कुंज है और फलों के ही झूले हैं - इस प्रकार असंख्य झूलों में प्रिया-प्रियतम झूलते हैं। मंजुलीला एवं सखियाँ झोंटा दे देकर उन्हें झुला रही हैं। इतने तीव्र झोंटे लग रहे हैं कि प्रिया तो डर जाती हैं। तीव्र झोंटो के बीच प्रियतम उस तीव्र झोंटा देने वाली सखी को ही उठाकर अपने साथ ले लेते हैं । कभी ललिता को, कभी विशाखा को इस प्रकार अपने साथ झूले में बैठाकर वे झुलाते एवं उतारते हैं कि किसी सखी को तनिक भी आयास का अनुभव नहीं होता। अति सरस लीला चल रही है।

मधुमती मंजरी अति सरस ध्वनि में वीणा वादन कर रही हैं । कहीं तुंग विद्या आलाप लेकर तान सुना रही हैं। उनका कण्ठ इतना सरस एवं सुरीला है कि झूलन थम जाता है ।

(१६) यहाँ प्रियतम सखियों सहित जल क्रीड़ा कर रहे हैं ।

(१७) यहाँ प्रियतम सखियों सहित पासा खेल रहे हैं ।

(१८) यहाँ प्रहेलिका प्रश्नावली लीला हो रही है ।

(१९) लो, अब प्रिया सूर्य पूजा के लिये जाती हैं । प्रियतम एक बार तो गोचारण में विलम्ब हुआ कहकर वन में चले जाते हैं, परन्तु ब्रह्मचारी बनकर पुनः सूर्य पूजन कराने चले आते हैं । यह छद्‌म ब्रह्मचारी की लीला बहुत ही सरस है।

(२०) सूर्य पूजा सम्पादित करके प्रिया वन से आकर अति श्रान्त थककर महल में शयन कर लेती हैं। परन्तु प्रियतम की प्रगाढ़ स्मृति में उन्हें बार-बार गूढ़ भावावेश होता है। मंजुलीला पर्यंक में शयन करती रानी पर व्यजन कर रही हैं ·। उनके चरण संवाहन कर रही हैं।

(२१) अब सायंकालीन पाक रचना हो रही है । और मंजुलीला रानी को पाक रचना कार्य में पूर्ण सहयोग कर रही हैं ।

(२२) राधारानी अब अपरान्ह स्नान करने गिरिस्रोत में जा रही हैं । मंजुलीला उनके वस्त्राभूषणादि लेकर उनका अनुगमन करती है । गिरिस्रोत के दूसरे तट पर प्रिया को प्रियतम स्नान करते दृष्टिगोचर होते हैं । दोनो की वनमालायें एक के कंठ से जल में तैरती दूसरे के कंठ में आ जाती हैं। इस प्रकार प्रेम निवेदन होता है ।

(२३) रानी सायाह्न श्रृंगार करती हैं । प्रिया भावाविष्ट हैं । ललिता साम,दाम,दंड,भेद से किसी प्रकार उनका भावावेश शिथिल कर उन्हें श्रृंगारित करती हैं ।

(२४) अब नन्दनन्दन वन से नन्दभवन लौट रहे हैं, सखियों से घिरी वृन्दावनेश्वरी के पीछे-पीछे मंजुलीला भी वन से लौटती सखाओं से घिरी प्रियतम की आवनी लीला का दर्शन करती हैं । प्रियतम अपनी पुष्प गेंद प्रिया पर उछालते हैं जिसे प्रिया हाथों में ले लेती हैं । उसमें रात्रि में किस कुंज में मिलेंगे इसका संकेत रहता है ।

(२५) लो, अब तुलसी सखी आ गयी हैं, रसोई घर से सम्पूर्ण भोज्य सामग्री लेकर मंजुलीला नन्दभवन जाती हैं । साथ में वे प्रिया द्वारा अपने हाथों रचित सुन्दर पुष्प-माला और ताम्बूल जो स्वर्ण बरक से युक्त है प्रियतम को समर्पित करती हैं । वे प्रियतम को निशा मिलन के लिये कुंज-संकेत भी करती हैं ।

(२६) नन्दभवन से लौटती हुई वे श्रीकृष्ण का प्रसाद उनकी पहनी वनमाला, उनका चर्वित ताम्बूल साथ लाती हैं ।

(२७) रानी के निवास में आकर वे वह प्रसाद रानी एवं सखियों में वितरित करती हैं । वे सायंकाल रानी के कक्ष में अतिशय सुगन्धित धूप जलाती हैं जो रानी को अतिशय प्रिय हैं ।

(२८) रानी को पीने के लिये अतिशय सुगन्धित, केवड़ा पुष्पों से संयुक्त जल प्रदान करती हैं। रानी को भोजनोपरान्त आचमन पात्र में आचमन कराती हैं। रानी को पश्चात् वे ताम्बूल अर्पण करती हैं। अब वे सखियों सहित रानी का एवं प्रियतम का अवशिष्ट अधरामृत प्रसाद भोजन कर रही हैं।

(२९) प्रदोष काल हो गया । अब वृन्दावनेश्वरी का सखियाँ पुन: श्रृंगार करने लगीं । उज्ज्वल पक्ष में रानी को शुभ्र वस्त्र एवं उज्ज्वल स्वच्छ श्वेत मुक्ता एवं वज्रमणियों का श्रृंगार धारण कराया जाता है तथा कृष्ण पक्ष में उनका सम्पूर्ण श्रृंगार नील वस्त्र और नीलम के आभूषणों से ही किया जाता है । कृष्णपक्ष में तो उनकी दंतपंक्ति मिस्सी नामक रंग से काली कर दी जाती है । रानी को तदनुकूल श्रृंगार से सजाने में मंजुलीला ललिता का सहयोग कर रही हैं ।

(३०) रानी अभिसार को जा रही हैं । मंजुलीला उनका अनुगमन कर रही हैं । अहा वृन्दावनेश्वरी के नूपुर और उनकी कटि किंकिणी अतिशय रमणीय ध्वनि कर रही हैं, परन्तु मंजुलीला रानी का निशाविहार-गमन होने से नूपुरों में एवं कटि किंकिणी में वस्त्र बाँधती हैं जिससे निश्शब्द रानी वन-गमन करें ।

(३१) अहा सुदूर संकेत कुंज में स्थित प्रियतम वेणुध्वनि कर रहे हैं ! वह वेणुध्वनि मंजुलीला एवं प्रिया के श्रवणों में पड़ रही है, जिससे दोनों में रस मुग्धता सृष्ट हो रही है । वेणुवादन सुनकर प्रिया में जड़िमा भावोदय हो जाता है । ललिता का संकेत पाकर मंजुलीला प्रियतम के पास जाकर उन्हें वेणुवादन से विरत करती हैं ।

(३२) संकेत कुंज में प्रिया-प्रियतम का मिलन होता है । मंजुलीलाजी विमुग्ध हुई उस अपूर्व मिलन का दर्शन करती हैं ।

(३३) कदम्ब वृक्ष के नीचे सुन्दर पर्यंक में प्रिया-प्रियतम विराजित हैं । शुभ्र शीतल चाँदनी छिटक रही है । संपूर्ण वन आनन्द से भरा है । सखियाँ, नृत्य गीत एवं वाद्यों के वादन से प्रिया-प्रियतम को सुख प्रदान कर रही हैं ।

कभी मंजुलीलाजी प्रिया-प्रियतम को अति सुवासित ताम्बूल भेंट करती हैं, कभी नवीन सुगन्धित पुष्पमाला पहनाती हैं, कभी व्यंजन द्वारा शीतल हवा करती हैं । कभी सुवासित शीतल जलपान कराती हैं । कभी उनके चरण प्रान्त में बैठकर उनके चरण सहलाती हैं ।

सखियाँ प्रिया-प्रियतम का रासोचित श्रृंगार करती हैं । और तब रासोत्सव होता है ? मंजुलीला भी रासोत्सव में सम्मिलित होती हैं और रासोत्सव के पश्चात् परिश्रान्त प्रिया-प्रियतम को सुकोमल शय्या में सुलाती हैं। व्यजनादि द्वारा उनकी सेवा करती हैं । प्रिया प्रियतम के शयन कुंज से थोड़ा सा हटकर उनके रसालाप का श्रवण करती वे उनके कुंज के समीप ही सो जाती हैं ।

यह एवं इससे मिलती जुलती श्रीमंजुलीला की अष्टयाम चर्या रहती है। राधाष्टमी एवं जन्माष्टमी के दो दिन बाद तक नन्दनन्दन की गोचारण लीला और रानी की सूर्यपूजा स्थगित रहती है । इसी प्रकार बसन्त पंचमी से लेकर दोल पूर्णिमा तक भी ये लीलाएँ स्थगित रहती हैं । इन दिनों गोचारण का कार्य गोप ही करते हैं । श्रीकृष्ण बसन्त पंचमी से दोल पर्यन्त होली खेलने सखाओं के साथ वृषभानुपुर जाते हैं और सखियाँ नन्द भवन में आती हैं । होली क्रीड़ा का कार्य ४० दिन तक प्रिया-प्रियतम के मध्य खूब उत्साह के साथ होता है।

मंजुलीला भाव
(प्रियतम द्वारा वंशीवादन करके आवाहन एवं श्रृंगार)

देखो ! देखो !! भाई, ये नीलमयंक देव ललित तृभंग मुद्रा में खड़े हुए त्रिलोकी को मोहित कर रहे हैं । अहा ! इनके अंग-अंग कितने मनोहर हैं । काजल के समान सुचिक्कण इनका वर्ण है । परन्तु इनके वर्ण की सांगोपांग तुलना काजल कदापि-कदापि नहीं कर सकता । काजल में सुचिकणता के अतिरिक्त अन्य गुण कहाँ है, जो इनके वर्ण में भरे हैं । इनका वर्ण सुधा के समान शीतल है, सरस है, मादक है और प्राणों को आप्यायित करने वाला है, साथ ही लावण्य एवं मधुरता से भरा है और कोटि-कोटि चन्द्रों के शीतल प्रकाश को तुच्छ करने वाला तेजस्वी भी है, साथ ही इनका वर्ण परम सविन्मय है । अब काजल विचारा इतने गुण एक साथ कहाँ से अपने में

प्रकट करे । क्या इन्द्रनील मणि उसकी कभी पूरी कर सकती है ? परन्तु इन्द्रनील में मात्र प्रकाश ही तो है, और वह भी ऐसा निर्मल प्रकाश कहाँ जो इन नीलमणिदेव की संतुलना में ठहर सके । फिर वह तो अत्यन्त कठोर पत्थर ही तो है । और नीलकमल ? नीलकमल में किंचित् मात्र कोमलता तो है, परन्तु वह सरसता नहीं है । मेघमाला में सरसता है तो कान्ति की किरणें नहीं हैं, सभी उपमानों के गुण परिच्छिन्न, ससीम, अल्प हैं । ये नीलमणि नन्दतनूज देवाधिदेव रसराज तो माधुर्य, लावण्य, रूप, सौरभ, सौकुमार्य, श्रृंगार, सौशील्य, चांचल्य, यशस्विता आदि सर्वगुणों के असीम, अपरिच्छिन्न सागर हैं । इनके अंगों में पिंगल दुकूल झलमला रहा है । वक्षः स्थल पर रंग विरंगी वनमाला झूल रही है । अंग-अंग पर रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे हैं । परन्तु कण्ठदेश पर विराजित गुञ्जा की माला सर्वाभरणों को हेय बना रही हैं ।

विविध रस-विलास के अनुपम आकर हैं, ये ।

लम्बी घुंघराली अलकें हैं जिनसे विविध प्रकार का विलक्षण सुवास प्रसरित हो रहा है । केशपाश विभिन्न पुष्प मालाओं से सुशोभित है । ओह ! कितनी मनमोहक बन गयी है इससे चूड़ा की कान्ति । चमकते हुए ललाट पर चन्दन की खौर अत्यन्त शोभा दे रही है । लीलायुक्त चढ़ी हुई भौहों के विलास से वे कामिनियों का चित्त हरण कर रहे हैं । उनके झूमते हुए कमनीय नेत्र कमलों की छटा धारण किये हैं । गरुड़ की चौंच के समान नुकीली नासिका के अग्रभाग में मुक्ताफल लटक रहा है । दोनों कान स्वभाव से ही मनोहर हैं, विविध-मणि-जटित मकराकृति कुण्डलों से वे और भी भले लगते हैं । उनका प्रतिबिम्ब दर्पण सदृश कपोलों पर पड़ रहा है । जिससे ये कपोल और भी चमक उठे हैं । लावण्ययुक्त मुखरविन्द कोटि-कोटि शशधरों की कान्ति बिखेर रहा है । ठोड़ी विविध हास्य रस की छटा से अत्यन्त मधुर एवं प्रकाशयुक्त प्रतीत हो रही है। कण्ठदेश में मुक्ताहार सुशोभित हैं। अहा ! कितना लावण्य भरा है इस कण्ठ में । त्रिभंगी मुद्रा में खड़े हुए वे त्रिलोकी को मोहित कर रहे हैं । ग्रीवा की मरोड़ कैसी मधुर एवं आकर्षक है । वक्षःस्थल तो मानो लावण्य का आकर ही है । मणिश्रेष्ठ कौस्तुम तथा विद्युत के समान चमचम करती मुक्तामाला उसकी शोभा को द्विगुणित कर रही है। घुटनों तक लटकती दोनों भुजाओं में केयूर एवं कंकण शोभा पा रहे हैं। उदर अत्यन्त मनोमोहक है, उस पर लावण्य अहर्निश क्रीड़ा करता है।

पृष्ठदेश एवं पार्श्वभाग भी अमृत के समान मधुर है । वर्तुल नितम्बभाग सुधा सम्भृत कमल के समान मादक है । कन्दर्प स्वयं मोहित है इसे देखकर। दोनों उरु मनोहर कदली स्तंभों की शोभा को परास्त कर रहे हैं ।

चरण कमल परम मनोहर एवं रत्नजटित नूपुरों से मण्डित हैं। विलक्षण प्रेम एवं आनन्द के सिन्धु ये इन लताओं की ओट में यमुना के मनोहर घाट के प्रस्तर खण्ड में खड़े-खड़े किसी का ध्यान कर रहे हैं । अखिल ब्रह्माण्ड नायक, अनन्त अपरिच्छिन्नैश्वर्य, अचिन्त्य महाशक्ति निकेतन, अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य ज्ञान विस्मृत कर मुग्ध शिशु की तरह ध्यानरत हैं ? परन्तु भाई ! यह ध्यान की कौन सी मुद्रा है ?

लोग पद्मासन लगाकर, सिद्धासन में ध्यान करते हैं, ज्ञानमुद्रा धारण करते हैं । परन्तु ये तो अधरों पर मुरली विधृत कर ध्यान कर रहे हैं । और यह मुरली भी कैसी भाग्यवती है, यह प्रियतम की नव पल्लव सदृश अधर शय्या में तो लेटी है और बिम्ब-बिडम्बी ओष्ठ के आलिंगन-पाश में बद्ध हुई प्राणों की प्रीति सुरभि से संलालित हो रही है । प्रियतम के अति सुकोमलतम कर-पल्लव इसके अंग-अंग को संवाहित कर रहे हैं । अरे भाई । यह मुरली तो प्रियतम की दूती है । प्राणप्रियतम नीलमणि की परमाराध्या प्रिया को यही तो उनके सम्मुख आकर्षित करके लाती है। अतिशय विलक्षण है यह बांसुरी। यह दृष्टिगाचर होती भर है छिद्रयुक्त बाँस की काष्ठ, परन्तु जब इसका रव बजता है तब जिसे यह नन्दतनूज अपने पार्श्व में बुलाना चाहता है, मात्र उसी को तो यह वंशीवादन श्रवणगोचर होता है, अन्य तो इसके श्रवण से बहरे रहते हैं और उसे स्पष्ट अनुभव होता है कि ये नीलसुन्दर उसके सम्मुख ही खड़े अथवा बैठे बाँसुरी में उसका नाम ले लेकर उसे पुकार रहे हैं । आह्वान कर रहे हैं, बस मेरा मात्र मेरा ही ।

फिर क्या संघटित होता है उसे भी सुन लो । जिसका यह नाम ले लेकर नयन मूंदे ध्यान कर रहा है, वह जिस अवस्था में जहाँ, जैसे है वहीं से उसी अवस्था में दौड़ पड़ता है, या दौड़ पड़ती है । उसे अपने तंन की स्मृति ही नहीं रहती । मन कहाँ है ? क्या हुआ उसके मन का ? कौन बतावे ? इस वंशी में लगायी फूंक उसके मन, बुद्धि, चित्त, समस्त ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों, अहंकार और उसकी आत्मा का भी इन नीलसुन्दरदेव से तादात्म्य कर देती है, इसे तादात्म्य भी नहीं कहा जा सकता ? क्योंकि तादात्म्य में तो पूर्ण विलय हो जाता है । फिर तड़प, जलन, चिन्ता, हाहाकार उसे थोड़े ही

होता है । परन्तु इस फूँक को सुनने वाली तो एक मीठी कसक लेकर यावज्जीवन जलाभाव में मत्स्यी की तरह तड़पती है, हाहाकार करती है और ऐसी आग उसके हृदय में जलती है जिसका अनन्त काल तक विराम ही नहीं होता । फिर तो उसका भोजन-पान छूट जाता है । उसका स्नान ध्यान, उसकी केश संरचना, श्रृंगार, उसका मर्यादा एवं शील व्यवहार, उसका धर्म, उसके पति, पिता-माता, भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्री का ज्ञान, उसका निवास सब छूट जाते हैं। उसकी मानस भूमि से सभी - जैसे कभी थे ही नहीं - इस प्रकार विलुप्त हो जाते हैं । आतुर कलिन्दनन्दिनी का प्रवाह जैसे उद्दाम रूप में उद्वेलित हुआ पहले सुरसरि से संगमित होता है और तब नील समुद्र की ओर अविराम दौड़ पड़ता है, उसी तरह वह भी इस वेणु नादामृत रूप सुरसरि से संगमित होते ही एकीभूत धारा हुई नीलसिन्धु प्राणवल्लभ नन्दतनय से मिलने भाग छूटती है । इस वंश-काष्ठ की छिद्रभरी लकुटी का ऐसा ही प्राणोन्मादी प्रभाव है कि इस प्राण-विमोहक स्वर-लहरी की निर्बाध सत्ता के सम्मुख कोई अन्य अस्तित्व रह भी तो नहीं पाता । मात्र एक ही अस्तित्व रहता है और वह है इसका वादक यह नील तृभंगी नन्दतनय ।

तो रानी का समादेश पाकर मंजुलीला अपने मस्तक पर स्वर्ण कलशी रखे पूजार्थ यमुना जल लाने घाट की ओर अग्रसर हुई ही थी । उसके रूप की किरणों से दिशायें उद्भासित हो रही थीं । परन्तु इस नीलमंयक देव की वंशी रूपिणी आवाहन ध्वनि उसके श्रवण-विवरों में पड़ ही गयी। फिर क्या ? पैर भटक गये ? चरण रखती है कहीं, परन्तु पड़ते हैं कहीं । इस प्रकार स्वाभाविक ही उसका पद-विन्यास हो उठा उसी दिशा की ओर, जिधर से यह नीलमंयक देव वंशी की तान छेड़ रहा था ।

मंजुलीला अपने को संवरित करने की चेष्टा करती है, परन्तु अकारण ही उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। इतना ही नहीं वह देख रही थी कि वृक्ष समूह भी रसों की अटूट धारा बहा रहे हैं । और यमुना भी अपना प्रवाह उलटा कर रही है । यह वंशी ऐसा अमृत रस बहा रही थी कि उसका चित्त उन्माद-ग्रस्त हो उठा । उसे यह नाद चन्द्रमा से अधिक शीतल, निखिल लोक की सम्पूर्ण मधुरिमा से भी अधिक मधुर लगने लगा। वंशीनाद की चुम्बकीय शक्ति उसे आकर्षित कर लायी वहीं नन्दनन्दन के अति समीप और उसके पार्श्व में ही यह अति मोहित हुई आसीन हो गयी ।

अहा ! कैसा चमत्कार है, इसी समय चतुर्दिक वृक्षावलियों और लताओं ने स्वभावतः ही सुन्दर कुंज का निर्माण कर दिया । वल्लरियों ने सुगन्धित रंग बिरंगे पुष्प गिरा-गिराकर आस्तरण निर्माण कर दिया ।

जो भी व्यक्ति नीलसुन्दर की मुसकाती मुख-छवि अपने नयनों के सम्मुख देखने को पा जावे और उसकी अति मधुर वंशी की तान श्रवण-गोचर कर ले - फिर भला क्या वह अपनी देह सुधि को संभाल सकेगा ? कदापि नहीं । सो मंजुलीला स्निग्ध नयनों से अपने प्राणधन रसनिधान प्रियतम को एक-टक निहारने लगी । उसे न तो देह-सुध थी एवं न ही भूत-भविष्य, कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान । उसकी पलकें गिरे - यह तो असंभव था । नन्दनन्दन की परम सुन्दर मुख छवि सर्वप्रथम जड़िमा का अस्त्र चलाती ही पलकों पर हैं । सो नयन उस रूप पर स्थिर हो गये । अब पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानादि पंचोपचार भी तो करना था । सो नयनों ने अश्रु-वर्षा कर इन सबकी सामग्री भी उपस्थित कर दी । यही तो प्रीति की पद्धति है ।

मंजुलीला अचेतन सी, स्पन्दन शून्य गिर गयी अपने जीवन सर्वस्व प्राणधन के चारु चिन्मय चरणों में । प्राणधन ने उसे भुजपाश में भरकर उठा लिया । परिरंभण के बंधन में आबद्ध हो गयी वह । प्रियतम के नयनों से भी शुचितम अश्रु-प्रवाहिणी धारा अविच्छिन्न प्रसरित होने लगी । इस प्रीति वैकल्य की अवधि कितनी थी - इसे कौन बतावे ? परन्तु जब भी वह प्रकृतिस्थ हुई उस क्षण प्रियतम का कर सरोज उसके मस्तक पर विराजित था । वे उसे पीयूषवर्षिणी दृष्टि से निहार रहे थे ।

किसी के लिये यह सौभाग्य केवल निर्धारित मात्र हो जाय, यही बहुत दुर्लभ प्राप्ति है, व्रजेन्द्र-नन्दन की कृपा-शक्ति शत-सहस्र युगों में ही सही कभी तो ऐसे सुदुर्लभ संयोग का विधान कर देगी - यह आशा होना भी बहुत ही असंभव सी बात है, फिर ऐसा विधान होकर यह महान् कृपा का अवसर उपस्थित हो जाय, उसके सौभाग्य और जीवन-सार्थकता की तो बात ही क्या है ?

और अब रसामृत सिन्धु में डूबे एवं डुबोते हुए प्रियतम मंजुलीला का श्रृंगार करने लगे । उच्छलित आनन्दोदधि की अमित, अमाप, उत्ताल तरंगों में वे दोनो डूबने उतराने लगे ।

अपने मृदुल कर से उसकी केशराशि को सहला-सहला कर, अतिशय प्यार से अलकावलि को अपने कर-कमलों से सुलझाते हुए, फिर प्यार से उसे

अपने कपोलों से, नयनों से, हृदय देश से लगाते हुए वे उसकी केश-रचना करने लगे । अहा ! एक-एक अलकावलि को वे कितने प्यार से निहारते हैं, फिर उसमें अपने हाथों निर्मित फूलमाला को लपेटते हैं । प्रेमवश उस अलकावलि पर उनकी अश्रु-बिन्दुएँ ढलक कर उसे चिन्मय-रस-सराबोर कर देती हैं, तब उस आर्द्रता को अपने अंचल से सुखाते हैं, उसका प्यार से चुंबन लेते हैं और इस प्रकार प्रत्येक लट को नेह सुधा में आप्यायित करते हुए उसको पुष्पों से अलंकृत करते हैं, मणिमालाओं से गूँथते हैं और केशराशि में कैसी विलक्षण कलाकृतियाँ निर्मित कर देते हैं ।

अहा ! अपने मधुस्यन्दी स्वर से प्रीति मधुभरी वाणी बोल-बोलकर वे मंजुलीला के मानस को प्रीति मधुपूरित करते हुए उसके ललाट पर कस्तूरी पंक से चित्र रचना करते हैं । उसके कपोलों पर पुष्प रचना करते हैं, कानों में पुष्पाभरण तरौना पहनाते हैं, अधरों को सुमनों से निर्मित रंगों से रंजित करते हैं । चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु की रचना करते हैं । अहा ! मंजुलीला के नेत्रों में प्रीति उद्रेक से जल कण छलक आते हैं, जिससे उनके नयनों का काजल कपोलों के सब श्रृंगार को बार-बार शुचि श्यामल धारा में परिस्नात करा देता है ।

प्रियतम इसे देखकर मुसका उठते हैं । परम सौहार्द से भरे वे बार-बार अपने हाथों में सुकोमल पीताम्बर छोर लेकर अपनी प्रिया मंजुलीला के आर्द्र नेत्रों को सुखाते हैं, कज्जल की धाराओं से बनी अस्त-व्यस्त रेखाओं को पौछते हैं, उनके कृष्ण दागों को अपने अधरों की लालिमा दे देकर उन्हें पुन: स्वाभाविक वर्ण का बनाते हैं और तब पुन: श्रृंगार करना प्रारम्भ करते हैं ।

अहा मुख का श्रृंगार सम्पन्न कर प्रियतम मंजुलीला का वक्षस्थल श्रृंगारित करने लगे । उन्होने मंजुलीलाजी की कंचुकी अपसारित कर दी । उनके उरोजों के सौन्दर्य का दर्शन करने मात्र से प्रियतम के नेत्र रसानन्द सिन्धु में डूबने लगे । दिव्यातिदिव्य रसवर्षी इन उरोजों में स्वर्णिम कमल कलियों का सा सौन्दर्य व्यक्त हो रहा था । अहा वे नवोत्थित गोलाकार स्तनमंडल अनन्त रस-गुणों की खान थे और प्रियतम के चित्त वित्त को बाँधे हुईं दो चारु गठड़ियाँ थीं । जैसे दो असाधारण लावण्य भरी सहस्रदल अरविन्द की कलिकाएँ परस्पर संलग्न सटी हुई रूपादि दर्प से मदमत्त प्रियतम के सर्वस्वभूत चित्त को चुराने की उद्घोषणा कर रही हों, उनका ऐसा अनंग सागर को उछालता रूप था ।

अपने प्रियतम के अंक में स्थित रहते हुए भी मंजुलीला प्रेम वैचित्त्य की दशा को प्राप्त हो जाती हैं । वे हा प्राणवल्लभ ! तुम कहाँ हो ? इस प्रकार मधुर-प्रलाप करने लगती हैं ।

उरोजों से निस्सरित अप्राकृत दिव्य सुवास से परिपूरित हो उठती हैं प्रियतम की घ्राणेन्द्रियाँ। अहा! ये सौन्दर्यपूर कुचद्वय युगपत् विरुद्ध गुणधर्म प्रकाशित कर रहे थे। अति कठोर भी थे और सुकोमलतम भी थे। प्रियतम की समग्र त्वगिन्द्रियों को ये निसर्ग से अतीत संविन्मय रसानुभव में निमग्न कर रहे थे।

देखो ! देखो ! इन उरोजों में अंकित 'राधा' 'राधा' नाम देखने मात्र से प्रियतम की कैसी निसर्गातीत विलक्षण भावदशा हो गयी है। अहा ! कैसी उद्दाम समर्पण भाव की तरंगें प्रियतम के चित्ताकाश में उठ रही हैं। इस राधा-राधा नामांकन को देखते ही वे अपनी पूर्ण सत्ता ही, अपना समग्र अस्तित्व ही मंजुलीला को दान कर बैठते हैं। वे संकल्प कर बैठते हैं कि इसकी परिणति मेरी स्वरूपभूता 'मंजुश्यामा' में हो जाय। यह बहुत ही अल्प समय मंजुलीला भाव में रहे और तब मेरी प्रिया की नक बेसर रूपा हुई सदा मेरे नित्य निवास प्रिया के ओष्ठ से संलग्न रहे। यह संकल्प करते-करते ही प्रियतम निसर्ग से अतीत संविन्मय रसानुभव में सर्वथा निमग्न हो जाते हैं। कहीं घोर जड़िमा भाव का विकास उनकी कर्मेन्द्रियों में नहीं हो जाय - इस संभावना को देखते हुए वे शीघ्रतापूर्वक किसी प्रकार शेष श्रृंगार सम्पादित कर पाते हैं।

अहा ! प्रियतम प्राणवल्लभ की कैसी विलक्षण दशा हो गयी है। उनकी मनःसत्ता को तो पूर्णरूपेण अपहृत कर लिया मंजुलीला ने और वे मात्र एक स्पन्दन-शून्य अस्तित्व मात्र ही शेष रह जाते हैं। मंजुलीला की भी यही दशा है। उसका मन भी स्वयं अपने पास नहीं रहा - वह भी डूब गया पूरा प्रियतम के मन में। सर्वथा अचेतन, स्पन्दन शून्य दोनों एक दूसरे के बाहुबन्धन में ग्रथित कितनी अवधि तक रहे - इसे कौन बतावे ? किन्तु जब दोनों प्रकृतिस्थ हुए तत्क्षण ही भगवती योगमाया ने मंजुलीला को प्रिया द्वारा कालिन्दी से जल लाने के आदेश की स्मृति करा दी।

वह अपने को सँभालकर शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। उन्होंने अपनी स्वर्ण कलशी सँभाली और यंत्रचालित सी चल पड़ीं यमुना तट की ओर। अपरिसीम, गंभीर, उच्छलित आनन्दोदधि की उत्ताल तरंगों में डूबती-उतराती यंत्रचालित सी ही उन्होंने गगरी यमुना जल से भरी। अरे ! वह लघु हेममयी उसकी

हृदय-कलसी तो प्रीतिरस से नित्य ही परिपूरित है, वह रिक्त हो तब तो उसमें कोई भाव तरंग प्रविष्ट हो। वह तो पूर्वतः ही लबालब भरी है। वह अति डगमगी चाल से चल पड़ी प्रिया राधारानी के कुंज की ओर। प्रियतम प्रेम की घनीभूत प्रतिमा, प्रेमास्पद के सुख की उपकरण बनीं उसकी कर्मेन्द्रियाँ यंत्रचालित सी यथायोग्य क्रिया कर रही हैं। उनके मन में भावों का अथाह उफान उठ रहा है। "प्रियतम प्राणनाथ ! मैं तो आपकी प्रिया किशोरी की एक तुच्छ चरण रज कणिका मात्र हूँ। मैं आपके द्वारा इस प्रकार समादृत होऊँ - यह मेरे लिये सर्वथा अयोग्य एवं अनुचित है। क्या आपसे इस प्रकार मेरा मिलन रानी की गौरवमयी मर्यादा के अनुरूप है ? हाय ! आप पुनः मेरे साथ ऐसी कोई प्रीति भरी क्रिया करें इसके पूर्व मैं अपना यह कलंक-पूर्ण मुख ही उसे न दिखाऊँ - यही मेरे लिये उचित होगा। मैं रानी का संग त्याग कर ही चली जाऊँगी। बस, एक बार उनसे क्षमा प्रार्थना कर लूँ। परन्तु उन्हें यह कैसे विश्वास होगा कि जो कुछ भी हुआ उसमें मेरी अपनी तनिक भी रुचि सर्वथा-सर्वथा ही नहीं थी। हाय ! प्रत्यक्षदर्शी साक्षी तो मेरा कोई हो ही नहीं सकता। पक्षीगण भी स्थूल क्रिया की ही साक्ष्य देंगे। भला, मेरे मन को अन्तर्यामी परमात्मा के अतिरिक्त कौन जान पावेगा ?

इसी प्रकार भावोच्छलन के आवर्त्तों में डूबती उतराती वे रानी के कुंज में चली आती हैं। अपने सिर पर रखी जमुना जल की गगरी रूप मंजरी को सौंप वे रानी के वक्षस्थल में सिर रखकर फफक-फफक कर रोने लगती हैं।

रानी की पारखी आँखें तत्क्षण ही अनुभव कर लेती हैं कि इस सरलमति निर्दोष बालिका को उनके छलिया प्रियतम ने इस परिताप की मनःस्थिति में पटक दिया है। प्रियतम ने इसके अंग-अंग का अनावृत श्रृंगार किया है। मंजुलीला के अणु-अणु में उन्हें अपने प्रियतम भरे दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मानस में अपने प्राणवल्लभ का संकल्प भी उसी क्षण मूर्त्त हो उठता है। रानी को स्पष्ट अनुभव होता है कि यह उनकी सगी बहिन मंजुश्यामा ही है यह तो मात्र कुछ काल मंजुलीला का नाट्य मात्र कर रही है।

रानी के हृदय में मंजुलीला के प्रतिं कैसा रसमय वात्सल्य उमड़ता है इसे कोई क्या भाषा दे। रानी के हृदय में आत्मीयता की अभिनव उत्ताल लहरें उठ रही हैं।

मंजुलीला अति भावावेश में बोलती जा रही है। "मुझे नहीं चाहिये प्रियतम सुख । मेरा सब सुख मात्र रानी का सुख है। मेरा 'स्व' है ही

कहाँ ? मैं तो बिना मोल की क्रीत दासी हूँ, भला दासी का कोई 'स्व' संभव है। स्वामिनी ही तो उसकी सबकुछ होती है। मैं रानी की मात्र किंकरी हूँ। यावज्जीवन वही रहना चाहती हूँ। मैं उनकी दासियों की दासी हूँ। प्रियतम नीलम रे ..... मुझे क्षमा कर दो मेरे पास मेरा कुछ भी नहीं, सब मात्र रानी का है। इस विषय में तुम्हारी रुचि से मैं पृथक् ही रहूँगी। मैं अवश हूँ - मुझे क्षमा कर दो.... और रानी के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है जो मंजुलीला को अनवरत नेहस्नान से आर्द्र कर रही है।

मंजुलीला भाव
(प्रिया द्वारा श्रृंगार)

(यहाँ यह बात अच्छी प्रकार ध्यान में रखनी है कि ये सभी लीलायें इतनी उच्च कोटि के अधिकारियों के लिये है जिनका मन लोक और देह के लेशात्मक संस्कारों से सर्वथा परिशुद्ध एवं निर्मल हो चुका है। जहाँ ब्रह्मविद्या एवं वेद ऋचाओं की भी पहुँच नहीं है, उस पवित्रतम राज्य की ये लीलायें हैं;। यहाँ का श्रृंगार लौकिक देह-जनित सर्वथा नहीं है। जब प्राणधन नीलसुन्दर मंजुलीला का श्रृंगार करते हैं तो वे उनके महाभाव विग्रह तन में प्रीति के परमोच्च, रति, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव-जन्य परमोच्च महारस तत्व का बीज ही वपन करते हैं। इन महाभाग्यवान् गोपियों के अंग कोई प्राकृत रमणी के अंग तो हैं नहीं यहाँ तो एक अनन्य चिन्मय रसतत्व ही,परम विशुद्धतम सत्व ही परस्पर आश्रय और विषय हुआ लीलारत है। अत: जब राधारानी उनका श्रृंगार करती हैं तब भी वे उस महाभाग्यवान् कृपापात्रा सखी को महाभावोदधि की मोहन-मादनादि अति उच्च महा-गंभीर लहरियों के अनुभव की योग्यता ही प्रदान करती हैं। यहाँ लौकिक रमणी-रमण भाव लाना तो घोर नरक पतन है। अत: रसज्ञ पाठक सदा ध्यान रखें कि विशुद्ध-रस कुरस अरस कदापि नहीं हो।)

तपन तनया के तट पर वृक्षों से चतुर्दिक घिरे और विमल पुष्पाभरणों से लदी लताओं से आच्छादित कुंज में नीलसुन्दर ने मंजुलीला का पूर्ण मनोयोग पूर्वक श्रृंगार किया है। रानी और प्रियतम कोई दो स्वतंत्र पृथक् भिन्न सत्ताएँ तो हैं नहीं। रानी प्राणवल्लभ की प्राणों की प्रतिमा हैं। प्रियतम नीलमणि रानी के प्राण-निवास हैं। रानी सर्वरूप में अपने राजा की हैं और राजा रानी

का – दोनों का यह मधुर परम रमणीय नित्य संबंध है। प्रियतम नीलमणि ही राधा रूप में प्रकट हैं और रासेश्वरी भानुकिशोरी ही श्रीकृष्ण नन्दतनय बनी हुईं हैं। वे किसी को भिन्न दिखें भले ही, भिन्न हैं तो कदापि नहीं। नित्य नवीन लीलाओं के निर्दोष रसास्वादन के क्षेत्र में नित्य भिन्न होते हुए भी, हैं तो नित्य अभिन्न ही। प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर का जीवन नित्य राधामय है और श्रीराधा का जीवन श्रीकृष्ण जीवन रूप है। प्रियतम में अपनी प्रिया के लिये परमोन्माद है और प्रिया में प्रियतम के लिये सीमारहित प्रेमोन्माद है। वे दोनों ही दोनों के मन के भावों का निर्विवाद अनुभव करते रहते हैं। इसीलिये परस्पर प्रेमी प्रेमास्पद बने हुए उसी भाव से एक दूसरे के मन की करते रहते हैं और दोनों में युगपत् एक दूसरे को सुख प्रदान करने का नया-नया चाव बढ़ता रहता है। दोनों का इस प्रकार संगरहित नित्य संग है। पता नहीं कब से प्रियतम प्रिया बने और प्रिया प्रियतम बनी इस प्रकार खेल कर रही हैं लीला हो रही है। यह नित्य अभिन्नता में नित्य भिन्नता कैसी मधुर और दिव्य है।

तो रानी की दृष्टि प्रियतम के हृदय के भीतरी भावों को आत्मगत कर लेती हैं। नील सुन्दर का मनोरथ रानी के हृत्पटल पर पूर्णतया स्पष्ट अंकित हो जाता है। नील सुन्दर किसी भी सखी, मंजरी दासी के भाव सौन्दर्य सुधा का आस्वादन करना चाहें - उसके भावोदधि से उद्‌भूत अमृत रस के पान की रुचि उनमें प्रकट हो जाय, रानी के लिये इतना सा संकेत पर्याप्त है।

ये सभी सखियाँ, दासियाँ, मंजरियाँ भी उनसे भिन्न थोड़े ही हैं। उनकी ही कायव्यूह रूपा ही तो हैं। फिर इस महाभाग्यवती मंजुलीला को तो यमुना जल लेने जाने पर उन्होंने वेणुवादन कर स्वयं आकर्षित किया है। उसका नाम ले लेकर आह्वान कर उसे आकर्षित किया है। फिर अपने कर-कमलों द्वारा श्रृंगारित करने के बहाने उसके अणु-अणु में, कण-कण में उन्होंने अपनी हृदयस्थ प्रीति पूर्ण रूप से उँड़ेल दी है। रानी मंजुलीला मंजरी के इस सौभाग्य को बिसार कैसे सकती हैं।

अत: अब प्रियतम श्रीकृष्ण ने जो कार्य अधूरा रखा है, उसे रानी को पूरा करना है। पुरुषोचित भाव के कारण जिन अंगों को प्रियतम रस-सिञ्चित नहीं कर पाये हैं, अथवा मंजुलीला नारी-जनित प्रधान लज्जा-भाव को न त्याग सकने के कारण जिन सुकोमल भावांगों को अवगुंठित रखे रही हैं, उन्हें रानी को रस–सज्जित कर देना है। तभी न मंजुलीला का निराविल

पूर्णमहाभाव रूप निखरेगा जिससे प्रियतम मंजुलीला पर पूर्णतया अपने को समर्पित कर पावेंगे। रसराज तो महाभाव समुद्र में ही समाहित होगा। अन्यथा तो वह इतना असमोर्ध्व है कि समग्र धाराओं को अपने में डुबा लेता है। उस अनन्त सीमाहीन तलहीन रसवारिधि को अपने में लीन करने की भला किसकी सामर्थ्य है ? अत: रानी को मंजुलीला में स्वयं को प्रतिमूर्त्त करके तब उसे प्रिय चरणों में समुपस्थित करना है।

वैसे तो व्रज की सभी रमणियाँ प्रेममयी हैं। उनकी समग्र वृत्तियाँ प्रियतम नीलमणि के चिदानन्दमय स्वरूप में ही रमण करती रहती हैं। इसी अर्थ में ही तो वे रमणी है। जो ऐसी रस गुणवती हो उठें कि सर्वभोक्ता सर्वरमण प्रियतम श्रीकृष्ण भी जिनके लिये रमणेच्छुक हो उठें, यही तो उन महा भाग्यवती गोपांगनाओं का रमणीपना है। उन समस्त ब्रजरमणियों में भी मंजुलीला को रानी द्वारा मुकुटमणि पद दिया जाना है।

हाँ, इधर तो रानी इस प्रीतिदान के महा उदार भाव में लहरा रही हैं और उधर मंजुलीला के अति निश्छल, निर्मल, पूर्ण समर्पणमय, स्वसुखवाञ्छा विरहित रानी की चरण-रेणु की कैंकर्य-स्पृहा से विभूषित चित्त में विपरीत भाव लहरियाँ उठ रहीं हैं। यही तो प्रीति जगत की वक्र-गति है।

रानी श्रृंगार कक्ष में मंजुलीला को किसी न किसी बहाने से बुला लेती हैं। आनन्द अनुराग के आवर्त्त में डूबतीं, उतरातीं वे प्यार से सराबोर हुई मंजुलीला की ओर निहारती हैं। रानी मंजुलीला के सुन्दरतम भावरूप को देखकर मुग्ध हो जाती हैं। रानी को लगता है यह तो प्रेम रस की उदधि है। अहा ! इस सर्व-सद्‌गुणमयी को अमने रस-गुण-गौरव की स्मृति का भी लेश नहीं है, न ही इस सौभाग्य का लेश-अभिमान ही है। अहा ! इसका संसार में रहना, चलना, इसके मन में उठने वाले भाव, विचार, चेहरे पर आने वाली भंगिमाएँ, सभी छोटी सी छोटी चेष्टाएँ भी प्रेम समुद्र की विविध विचित्र तरंगे ही तरंगे हैं। इसमें जो कुछ है सभी मात्र विशुद्ध प्रेमसागर का ही उच्छ्‌वास मात्र है। यह तो मेरे मन से ही मनवाली है, मेरे जीवन से ही इसका जीवन है, यह मेरे प्राणों से ही प्राणवाली है। इसके बिना मेरी और मेरे बिना इसकी भाव सत्ता ही नहीं है। रानी विधाता के प्रति कृतज्ञ हो उठती हैं कि मुझे कैसी असीम भाव सौन्दर्य शालिनी प्राण सहचरियाँ उसने प्रदान की हैं। अहा ! ये ही मेरी ऐसी अनमोल सम्पदायें हैं जिनसे मैं अपने प्राणधन की रस-लालसा की किंचिन्मात्र समर्चना कर सकती हूँ।

बलिहार है - इस मुख छबि पर जिसने प्राणरमण ब्रजेश-कुल-चन्द्र को अपने प्राणोन्मादी आकर्षण से प्रतिबद्ध कर दिया। और वे वेणुवादन द्वारा इसका नाम गायन करने को व्याकुल हो उठे।

रानी अपनी प्राण सखी मंजुलीला का सर्वांग श्रृंगार करने समुत्सुक हो उठीं। वे मंजुलीला को उस परमातिपरमोच्च भाव श्रृंगार से सुभूषित कर देना चाहती हैं जिससे उनके प्राण प्यारे की सर्व रस लालसा परितृप्त हो जाय। और वे उस पर पूर्णरूपेण रीझ जावें।

रानी इतनी भाव विभोर हैं कि सखी का श्रृंगार करने की उत्सुकता में उनका सर्वांग कलेवर ही कम्पायमान हो जाता है।

मंजुलीला रानी के इस मनोरथ को पहचान जाती हैं। वे रानी के चरणों में लिपट जाती हैं। उनके नयनों से झर-झर अश्रु प्रवाहित हो उठते हैं। हिचकियाँ बँध जाने के फलस्वरूप मंजुलीला विशुद्ध शब्दावली में बोल ही नहीं पाती :-

"मैं .... मेरी प्राणसखी मैं... म... महादोषी हूँ। मैंने भूल की बहिन ! बहुत ही अक्षम्य अपराध संघटित हो गया मुझसे। आज तक मैं कभी कलिन्द नन्दिनी की ओर एकाकिनी नहीं गयी थी। पूजार्थ जल लाने की तूने ही मुझे आज्ञा दी थी। मुझे एकाकिनी को कदापि नहीं जाना चाहिये था। सरोजनी, विमला, श्यामला, रस, रति, अशोक, गुण मेरे तनिक से संकेत पर कोई न कोई मेरे साथ अवश्य चल पड़तीं। परन्तु प्राणाधिके ! वह काल इतने प्रभात का था कि नन्दनन्दन नन्दभवन में शयन शय्या से उठे भी तो नहीं होंगे - यही मेरी परिकल्पना थी। स्वामिनी ! मुझ निगोड़ी ने न जाने किस बुरे मुहूर्त्त में यह सुनिश्चय कर लिया कि इस काल में मैं निर्बाध यमुना तट पहुँच जाऊँगी। इसी के फलस्वरूप इन उपरोक्त सभी सखियों को तेरी प्रातःकालीन स्नानादि सेवा में निरत पाकर मैं नितान्त एकाकिनी ही स्वर्ण गगरी लेकर सम्मोहन घाट की ओर निकल गयी।"

"मेरे कर्णपुटों में ज्यों ही मुरली रव प्रविष्ट हुआ, मुझे अपनी भूल समझ में आ गयी। परन्तु तब तक तो मैं निरुपाय थी। जब मुझे सुस्पष्ट ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रियतम मेरा नाम लेकर मुरली में मुझे ही पुकार रहे हैं, उस समय भी बहन ! सच समझना मैंने यहीं अनुमान किया कि वे निरे प्रभात तुझे कोई संकेत-पत्र प्रेषित करने मेरा आमंत्रण कर रहे हैं। वे तेरे ही निमित्त से नन्दभवन से इतने शीघ्र उठकर आये होंगे। इसी मनोरथ को लेकर उस

मुरली वादन ध्वनि का अनुगमन मैंने दो चार क्षण ही किया होगा कि फिर तो वह इतना आकर्षक लगा कि मुझे अपने तन-मन की सुधि ही नहीं रही।"

"मेरे शत सहस्त्र प्राणों की रानी ! मुझे अपनी हेतुरहित कृपा का प्रकाश देकर जिस शुचितम अनुराग से तूने मेरा पालन-पोषण किया है - काल के प्रवाह में हाय री सखि ! मैं तेरी गरिमा और मर्यादा के योग्य आचरण नहीं कर सकी। सर्वथा सर्वांश में मैं तेरे द्वारा श्रृंगारित होने की पात्रा कदापि नहीं हूँ।"

"हे उदार चूड़ामणि ! मेरी प्राणोपमा सखी किशोरी ! मेरी स्वामिनी ! तू तो अपने अपार प्रेममय स्वभाव का ही परिचय दे रही है। मेरे तन के कण-कण में तू अपने आपको ही श्रृंगार के रूप में भर दे रही है। मुझे सुख देने के लिये तू अपना सर्वस्व मुझे दे रही है। मुझसे प्रियतम का पूर्ण मिलन हो - यह संयोग संकल्प भी तू कर चुकी है। और यह भी ठीक जानती हूँ कि तेरे संकल्प के उदय होते ही लीला विधातृ शक्ति भी तदनुरूप संयोग विधान संगठित कर चुकी है। और यह भी सत्य है कि प्रियतम का भी तन-मन सब तेरे भ्रू नर्त्तन के अनुरूप ही क्रियाशील होगा। परन्तु प्राण संजीवनी ! अपने वात्सल्य के प्रवाह में तुझे तो मेरे दोष दृष्टिगोचर नहीं होते, परन्तु हाय हतभागिनी मैं, मेरे इन स्वसुख लालसारत प्राणों को इस तन में जो तेरे द्वारा श्रृंगारित होगा रख पाऊँगी ? कदापि नहीं, कदापि नहीं।"

"मेरी प्राणाराध्या ! मैं मानती हूँ कि मेरे गर्हित आचरण ने मेरी प्रीति अपवित्र कर दी है, इसके उपरान्त भी इस हृदयहीनता भरे आचरण का परिचय पाकर भी तू नित्य निरन्तर मुझे अपने अनुरागपूर उरस्थल में रखे हुए है एवं अपने परम पावन पवित्रतम स्नेह से मुझे आप्यायित कर रही है। मैं तेरे चरणों में निम्न मुखी हुई, अपना मुख उठाकर तेरी आँख से भी अपनी दृष्टि कैसी मिलाऊँ ? मैं इस अधम जीवन को तेरे आश्रय में ड़ाले हुए हूँ - यही मेरी निर्लज्जता की पराकाष्ठा है।"

"जीवनेश्वरि ! तुम्हारे इस परम पवित्र प्रेम के सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ। तुम्हारा निर्मलतम प्रेम तो सम्पूर्ण सुखों का उद्गम स्थल है। परन्तु बहन ! तू मेरे हृदय को अच्छी प्रकार टटोल ले। मुझमें कहीं भी रंचक मात्र भी प्रियतम से स्वसुख पाने की लालसा कभी भी रही हो और उससे प्रेरित होकर मेरे पैर, मन उनकी ओर बढ़े हों तो निश्चय ही तू मेरा श्रृंगार करके मुझे प्रियतम अंक शायिनी बना देना, परन्तु यदि यह सत्य न हो तो तेरे शुचितम

चरण सरोरुहों में ही मेरा स्थान एक रजकणिका के सदृश स्वीकार कर लेना, मुझे तेरे चरणों के आश्रय से एक क्षण मात्र के लिये भी मत हटाना।"

"मेरी प्राणों की रानी ! मेरी लाड़िली ! मुझ में इतनी सी भी योग्यता नहीं है कि मैं अपनी अलकों एवं पलकों से तेरी चरण रज कणिका को पौंछ भी सकूँ - परन्तु बहिन री ! मेरी इस अनधिकारिता को तेरे सिवा और कौन दूर कर पावेगा ? मेरी यह हृदय की अन्यतम साध क्या अधूरी ही रहेगी ? कदापि नहीं । तेरी अन्यतम हेतुरहित कृपा के बल पर ही यह कह रही हूँ कि मेरे नित्य निवास ये तेरे अरुण चरण ही निरवधि काल तक रहेंगे।"

मंजुलीला कहती जा रही थी और रानी के चरणों को इस प्रकार जकड़े हुए थी मानो किसी भी अवस्था में वह इन्हें नहीं ही छोड़ेगी।

रानी का अनुराग पूरित उरस्थल तपाये हुए सोने की भाँति सर्वथा तरल होकर अश्रुरूप में नेत्रों से झरने लगता है। नयनों की धारा से वे मंजुलीला को सिञ्चित करने लगती हैं। वे कह उठती हैं :-

सर बिनु सरसिज सरसिज बिनु सर
कि सरसिज बिनु सूरे, तन बिनु यौवन, यौवन बिनु तन
की यौवन पिये दूरे...... ।

"अरी बहिन तू ही बता, यदि किसी कासार में विकसित अरविन्द पुञ्जों का वन न हो तो भला उस कासार की कहीं कोई शोभा होगी और यदि सूर्य का अस्तित्व ही न हो तो उन अरविन्द पुञ्जों की शोभा को कोई निरख सकेगा ? इसी प्रकार यौवन हीन तन और तनहीन यौवन क्या अर्थ रखेंगे यदि पिय मिलन ही नहीं हो।

और सखि ! भुवन भास्कर के बिना दिवस निरर्थक ही है एवं चन्द्रदेव के बिना रजनी कैसी ?"

दिवस: को बिना सूर्य बिना चन्द्रेण का निशा
.................बिना कृष्णेन को व्रज: ।

"फिर प्रियतम नीलसुन्दर के बिना तो गोपी देह ही निरर्थक ही तो है। बहिन ! यदि प्राणवल्लभ नीलसुन्दर को यह यौवन समर्पित ही नहीं हुआ तो उसकी कृतकृत्यता ही कहाँ हुई ? मैं तो इसीलिये तेरा श्रृंगार कर रही थी कि

जिनके लिये तेरे अंग अंग में नव तारुण्य उमड़ रहा है, वे अपनी वस्तु को अंगीकार कर लें। सत्य बता बहन ! क्या तेरी तरुणाई के ग्राहक नन्दनन्दन नहीं है, तेरे यौवन का अणु-अणु प्रियतम प्राणरमण का आह्वान नहीं कर रहा है ? यह तेरी आजानुलम्बित वेणीबद्ध कृष्ण-कुंचित-कुन्तल राशि, कपोलों को संस्पर्शित करती अलकावलि और तेरा रोम-रोम प्राणवल्लभ प्राणवल्लभ की रट नहीं लगा रहा है ?"

रानी आगे कुछ भी कहे इसके पूर्व ही मंजुलीला ने रानी का मुख अपनी हथेलियों से बन्द कर दिया।

"बहना री ! मेरे असंख्य प्राण तुझ पर न्यौछावर हैं। परन्तु यह सब तो अति स्वाभाविक ही है। बोल बहिन ! यह कानन की धरा प्रियतम प्रियतम कह कर कृतकृत्य क्यों हो रही है ? प्रियतम जब अनावृत-चरण हुए कानन की धरा पर संचरण करते हैं तो उनके आगमन मात्र से यह कितनी धन्य-धन्य हो रही है। यह अनुक्षण प्रियतम के पाद पद्मों के स्पर्श से अतिशय सौभाग्य शालिनी हुई 'प्रियतम सुखी हों, प्रियतम सुखी हों'- यही रट लगा रही है।"

"केवल धरा ही नहीं धरा से सम्बद्ध सभी ये मरुत्, रवि, यह शशधर, यह अनन्त विस्तार लिये नभ - सभी के अन्तराल से - "मैं प्राणवल्लभ की, प्राणवल्लभ मेरे, मैं मात्र प्रियतम-सुखार्थ - प्रियतम मेरे" यही भाव तो प्रवाहित हो रहा है। ये क्षुद्र-से-क्षुद्र तृण-वीरुध, दूर्वा, कुश आदि भी मात्र जीवन्त हैं एक ही भाव से कि प्रियतम के चरण हमसे संस्पर्शित हो कर मात्र एक क्षण के लिये ही सुखानुभव कर लें। बोल बहिन ! ये द्रुम क्यों बारहों मास फलवान् हैं ? लतावल्लरियाँ सदा ही बिना ऋतु के ही क्यों पुष्प पल्लवों से लदी रही हैं ? यह तपन-तनया का मंजुल प्रवाह, यह बहता मानसी गंगा का शान्त स्रोत, यह सम्मुख अवस्थित गिरिराज गोवर्धन, और अन्य पर्वत मालाएँ, ये ऊपर, सामने, पीछे, दक्षिण वाम पार्श्व में उड़ते, आसीन, कलरव करते विहंगम कुल, सर्वत्र कानन में स्वच्छन्द विचरण करते पशु-समूह। ओह ! इन सर, गिरि, खग मृग सभी तो एक भाव से ही भावित हैं और यह भाव है हमारा अस्तित्व मात्र प्रियतम सुखार्थ है, मात्र प्रिया-प्रियतम सुखार्थ है, प्रिया प्रियतम सुख ही हमारा अस्तित्व है। फिर बहिन जब सभी पंचभूतात्मक इस ब्रजराज्य की सृष्टि ही प्रिया प्रियतम सुख में ही केन्द्रित है तो मेरा यौवन और अस्तित्व इस पावनतम इच्छा से विरहित कैसे रह पावेगा ? और इस सब सृष्टि में इस भावना का मूल स्रोत, मूल उद्गम कहाँ से स्फुटित हो रहा है ?

इस निर्मलतम प्रेम की मूल स्रोतस्विनी कौन है? मात्र तेरा प्रियतम प्रेम ही तो इस का मूल उद्‌गम स्रोत है। तेरे प्रियतम प्रेम की अगाध असीम लहरें ही तो इस समग्र सृष्टि में यह निर्मलतम प्रेम भाव प्रवाहित कर रही हैं।"

"तो बहन ! फिर मुझे पृथक् व्यक्तित्व क्यों दे रही हो ? कर श्रृंगार बहिन ! कर दे, पूर्ण श्रृंगार कर दे मेरा । परन्तु मेरे रोम-रोम में एक ही नाम का श्रृंगार हो और वह जो नाम अंकित हो - वह राधा का ही हो। मेरे समग्र रोम कूपों में तेरे कर कमलों से राधा नाम भर दे, मेरे अंग-अंग को राधा नाम से पूर्ण श्रृंगारित कर दे और फिर मुझे भेज दे प्राण प्रियतम के पास । उस समय प्रियतम की अंक शायिनी मैं नहीं होऊँगी। जिसका राधा नाम है, पंचभूतों का वह पुंज ही प्रियतम के पास जायगा। मुझे तेरा अनुग्रह शत-प्रतिशत स्वीकार्य है।"

और रानी के पास कुछ भी कहने को बचा ही कहाँ था। रानी तो मंजुलीला के अथाह अनाविल प्यार में अपनी अहंता को ही विस्मृत कर बैठी। वे अपने नयनों की प्रेमाश्रुधारा से मंजुलीला के अंग-अंग को सिंचित करती जातीं और तब अपनी कृष्ण तूलिका से कुंकुम भर कर उससे मंजुलीला के अंगों के रोम-रोम में राधा राधा अपना स्वनाम अंकित करने लगीं। उमड़ते अतिशय स्नेह भाव से रानी के द्वारा असम्बद्ध प्रलाप होने लग गया ।

और महाभाव समुद्र जब इतना उछलता है और उन्मादी हो उठता है तो मंजुलीला तट बचा कैसे रह सकता है ? "स्वर्ण को तपाया जाता है भला। रज के अणु की छाया भी न रहे पुरट पर, पुरट पात्र पर इसलिये।" किन्तु जब कनक कुन्दन का आभूषण हो ही जाता है तो फिर उस कुन्दन के आभूषण को तो रानी को अपने हृदय मन्दिर में संस्थापित करना ही है।

वैष्णवों ! समझ लो भाव राज्य में श्रृंगार कैसा होता है, एवं कौन करता है और जब श्रृंगार हो जाता है तो जिसका श्रृंगार हुआ वह क्या से क्या हो जाता है। रानी का प्रियतम निज हाथों नित्य श्रृंगार करते हैं, और प्रियतम का रानी नित्य श्रृंगार करती हैं - और वे नित्य नव नूतन रस सागर की उद्दाम लहरें बने लहराते हैं। जो वे पूर्व में थे, वे पुनः होकर कभी लौटते ही नहीं। समुद्र में एक लहर का प्रादुर्भाव हो जाता है, वह पुनः कभी नहीं आयेगी - दूसरे ही क्षण जो लहर उदित होगी वह नवीन, नित्य अभिनव नवीन होकर ही आवेगी। यही जलनिधि की शोभा है। इसी प्रकार यही भाव सिन्धु एवं रसनिधि की शोभा है -

कछुहै बासी होत न कबहूँ - नित नूतन रस बरसत।

देखत देखत नयन सिराने तऊ नयन नित तरसत।

देखो ! देखो पुनः महाभाव समुद्र उमड़ा। अरे वह अनन्त, अपरिसीम, असमोद्भव, नित्य सत्य संविन्मय महा समुद्र रानी के नेत्रों से टपकते अश्रु प्रवाह से, प्रेम जनित असम्बद्ध भाव-प्रलाप से उद्भूत हुआ और उसने मंजुलीला और उसके समग्र अस्तित्व को ही अपने रस में घोल लिया। अब तो मंजुलीला नाम एवं रूप जन्य आकृति एवं व्यक्तित्व ही घुलकर विलीन होगया उस महाभाव सिन्धु में और वह भाव सिन्धु उस समग्र को लेकर तिरोहित हो गया, रानी की नासा के अग्रभाम में स्थित बेसर में। और तब उस बेसर से प्रकट हो गयीं पुनः मंजुश्यामा, अनंगमंजरी रानी की अनुजा, राधानुजा।

वैष्णवों सत्य, परम सत्य मात्र महा भावसिन्धु है। जब मंजुलीला के व्यक्तित्व को पू. गुरुदेव पकड़े थे, उस व्यक्तित्व में पू. गुरुदेव की अस्मिता एकात्म थी, तब भी मंजुश्यामा, राधानुजा थीं। ये सभी भगवती श्री राधारानी की कायव्यूह स्वरूपा सखियाँ नित्य लीला की आवश्यकतम अंगस्वरूपा हैं। इनका न तो प्रादुर्भाव होता है, न ही विलय। परन्तु इनमें भिन्न-भिन्न महाभाग्यवान् साधक, गोपी भावापन्न जीवों की अस्मिता ही अपने-अपने भावों की विशुद्धि को लेकर प्रादुर्भूत हो उठती है। और उनका ही शनैः शनैः उच्चतर उच्चतम स्तरों में उन्नयन होता है। मंजुलीला मंजरी अनादि काल से हैं, अनन्त काल तक रहेंगी, परन्तु किस भाग्यवान् जीव को महाभावसिन्धु कब इन नित्य सिद्ध मंजरी लीला देहों में संयुक्त करेगा और कब एक सिद्ध देह से उस जीव को और उच्चतर लीला भूमिकाएँ प्रदान करता हुआ उच्चतम राधा भाव में प्रतिष्ठित कर देगा, इसका संचालन सूत्र तो भगवती श्री राधा रानी अथवा अघटना घटना पटीयसी भगवती आद्या महाशक्ति त्रिपुर सुन्दरी के ही कर कमलों में है। रंगमंच की सूत्रधार भी वे ही महाशक्ति हैं। किस पात्र को वे अपनी नाट्यशाला में किस भाव नाटिका के उपयुक्त चयन करें, सब उनका ही विधान है।

(भगवती श्री मंजुलीला मंजरी उत्कण्ठिता और विप्रलब्धा भावोच्छलन की प्रतीक हैं। पू. गुरुदेव मंजुलीला भाव में लगभग तीन वर्ष रहे।)

मंजुलीला भाव में
'राधा राधा' नामोच्चारण के पीछे की लीला-अनुभूति

पू० गुरुदेव का सन्यास लेने के पश्चात का नाम था श्रीमधुसूदनानन्द सरस्वती, परन्तु उन्होंने अपना यह नाम कभी किसी के सम्मुख प्रकट नहीं किया ।

एकबार श्रीपोद्दार महाराज के अनुयायी पं० श्रीगोवर्धनजी शर्मा रामायण-समिति के कार्य से गया जिले के दौरे पर गये थे । तब वे अरवल गये थे एवं जिज्ञासावश पू० गुरुदेव के जन्मस्थान फखरपुर ग्राम भी हो आये थे। उनके द्वारा ही सभी को पू० गुरुदेव का पूर्वाश्रम गृहस्थ का नाम चक्रधर मिश्र ज्ञात हुआ । तभी से उनका नाम स्वामी चक्रधरजी महाराज प्रचलित हो गया था ।

पू० गुरुदेव ने श्रीपोद्दार महाराज की रुचि से सर्वथा मौन ले लिया था । मौनावस्था में वे मात्र 'राधा-राधा' ही बोला करते थे । यदि कोई परमावश्यक संकेत उन्हें करना होता तब भी वे उसे स्लेट पट्टी पर लिखकर करते थे, परन्तु उस समय भी उनके मुख से उच्चारण 'राधा-राधा' शब्द ही हुआ करता था । मात्र 'राधा-राधा' बोलने से ही आगे जाकर वे 'राधाबाबा' नाम से विख्यात हो गये थे और लोग 'राधाबाबा' के नाम से उनसे देश-विदेश से पत्राचार भी करते थे ।

यह 'राधा-राधा' नामोच्चारण क्यों प्रारंभ हुआ, इसके पीछे एक परम चिन्मय दिव्यलीलानुभूति थी । यह दिव्यलीलानुभूति पू० गुरुदेव ने मुझे १९४८ ई० में बतलायी थी ।

सन् १९४० ई० से ही पू० गुरुदेव भाद्रपद शुक्ला अष्टमी एवं नवमी तिथि को श्रीराधाष्टमी महोत्सव मनाया करते थे । इस राधाजन्ममहोत्सव के उपलक्ष्य में दो दिवस राधा जन्म एवं दधिकर्दम उत्सव के पश्चात उद्दाम नाम-संकीर्तन हुआ करता था । इस संकीर्तन का संचालन १९५६ ई० तक पू० गुरुदेव स्वयं किया करते थे । सन् १९५६ ई० में जब उन्होंने काष्ठमौनव्रत ले लिया तब से यह संकीर्तन अन्य लोगों के द्वारा संचालित किया जाने लगा ।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमीमहोत्सव में उद्दाम नाम-संकीर्तन श्रीरघुबरदयालजी गोयल और श्रीमुरलीधरजी दोनों गीताप्रेस के कर्मचारी ही प्रारंभ किया करते थे, परन्तु थोड़े ही काल पश्चात् जो कीर्तन **'जय हरिगोबिन्द राधेगोविन्द'** की ध्वनि से प्रारंभ होता था, 'राधा-राधा' नाम में पर्यवसित हो जाया करता था और उसका सूत्र पू० गुरुदेव सम्हाल लेते थे ।

यह संकीर्तन इतना भावमय और तुमुल ध्वनि में हुआ करता था कि इसकी अवधि निश्चित नहीं थी । तीन-चार घण्टे के पूर्व तो कीर्तन के विराम का प्रश्न ही नहीं उठता था । घंटे, घड़ियाल, शंखध्वनि, झांझ, झालर, ढोलक एवं बंगाली मृदंग (खोल) के वादन और लय पर पू० गुरुदेव और सभी संकीर्तन करने वाले खड़े होकर भावनृत्य करते-करते 'राधा-राधा' नाम ध्वनि में इतने डूब जाते थे कि घड़ी की सूई कब पूरा चक्कर लगाकर एक घंटा व्यतीत हो गया बता रही है - किसी को पता ही नहीं चलता था । एक बार भावावेश में नेत्र बन्द होते और खुलते थे इतने में एक घण्टे का कालमान व्यतीत हो जाया करता था । खोल बजाने वाले की अँगुलियाँ अनभ्यासवश फट जाती थीं और रक्त से खोल लाल हो जाती थी । पू० गुरुदेव झालर हाथ में लिये बजाकर एवं पैरों से ताल देकर कीर्तन को मंद और तेज गति दिया करते थे । वे ही कीर्तन का नेतृत्व करते थे । इस कीर्तन में इतना आनन्दावेश होता था कि शरीर के श्रम की सुधि ही नहीं होती थी ।

इस उत्सव में किसी-किसी वर्ष श्रीपोद्दार महाराज भी सम्मिलित होते थे और तब श्रीराधा-विग्रहपूजन का कार्य उनके ही हाथों सम्पादित कराया जाता था । उन दिनों यह उत्सव पू० पोद्दार महाराज की निवास-स्थली के उस बड़े हाल में मनाया जाता था जिसमें कल्याण-कार्यालय भी था । यह उत्सव षष्ठी-उत्सव अर्थात् अष्टमी से त्रयोदशी तक लगातार चलता था और पच्चीस-तीस व्यक्ति इसमें उन दिनों प्रतिदिन सम्मिलित होते थे । पश्चात् तो इस उत्सव ने विराट रूप ले लिया और देश-विदेश से हजारों व्यक्ति इसमें सम्मिलित होने लगे । तब इसके विराट आयोजन को देखकर सन् १९५६ ई० में इसके लिये पृथक् रूप से विशाल पंडाल निर्माण कराया गया जो आज तक विद्यमान है । इसमें अब भी अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन चल रहा है ।

इसी उत्सव के एक वर्ष की घटना है; कीर्तन प्रारंभ करने का भार पू० गुरुदेव ने मुझे सौंप दिया । मेरे मन में भावोदय हुआ कि राधाजन्मोत्सव है

और राधाजी को 'कृष्ण' नाम अतिशय प्रिय है, अत: आज तो **'कृष्ण-कृष्ण'** की ध्वनि ही होनी चाहिए । हाँ, कृष्णजन्माष्टमी के दिन 'राधा-राधा' नाम ध्वनि हो, यह तो उपयुक्त है । परन्तु राधाष्टमी के दिवस वृषभानुनृपमन्दिर में ही श्रीराधाजी की उपस्थिति में 'राधा-राधा' कीर्तन हो - यह मुझे भाव-संगत प्रतीत नहीं हो रहा था । अत: मैंने उस दिन महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के द्वारा कराये जाने वाला **'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण हे'** संकीर्तन प्रारंभ कर दिया ।

परन्तु पू० गुरुदेव ने उसे प्रारंभ होते ही स्थगित कर दिया । इतने में ही श्रीपोद्दार महाराज भी आ गये । उनके साथ उनके एक मित्र एवं अनुयायी श्रीबजरंगलालजी बजाज भी थे । श्रीबजरंगलालजी को लोग ढोलकियाजी कहा करते थे । जब भी कहीं संकीर्तन होता तो ये गले में ढोलक बाँध लेते थे । अत: इनका नाम ही सर्वत्र 'ढोलकियाजी' प्रचलित हो गया था । वे श्रीपोद्दारजी से बहुत ही निस्संकोची थे । उन्होंने श्रीपोद्दार महाराज से कहा कि आज तो आप ही संकीर्तन कराइये । आश्चर्य, उस दिवस श्रीपोद्दार महाराज ने भी 'राधे-राधे' का कीर्तन प्रारंभ कर दिया । श्रीपोद्दार महाराज शरीर से वृद्ध एवं अशक्त थे, अत: बाद में तो कीर्तन का नेतृत्व पू० गुरुदेव ने ही सम्हाल लिया था। उस दिवस वह संकीर्तन ऐसा रंग लाया कि अभूतपूर्व आनन्द का समा ही बँध गया । श्रीमोतीजी पारीक नामक व्यक्ति तो भावावेश की चरमावस्था में पहुँच गये उस दिवस ऐसा लगने लगा था कि यदि संकीर्तन तत्क्षण स्थगित नहीं हुआ, तो संभव है श्रीमोतीजी महाराज महाभावावेश में परलोक-धाम ही नहीं चले जावें ।

कीर्तन के विराम होने के पश्चात् रात्रि में मैंने पू० गुरुदेव से प्रश्न कर दिया कि 'कृष्ण' नाम के प्रति आपके मन मे ऐसी उपेक्षा क्यों है ? जब उत्सव में कृष्ण-नाम-संकीर्तन प्रारंभ ही कर दिया गया था तो उसे विराम देकर 'राधा-राधा' संकीर्तन कराने के आप इतने आग्रही क्यों हो उठे ? उस पर उन्होंने मुसकाते हुए मुझे भगवती श्रीराधारानी की अति मधुरतम, दिव्य, परम अन्तरंग, चिन्मयी निम्नलिखित लीला श्रवण करायी थी । साथ ही यह भी कहा था कि इस लीला-दर्शन के पश्चात् उनका व्यक्तित्व इस भाव से इतना प्रभावित हुआ कि तभी से अन्य नामजप - यहाँ तक कि मंत्रजप के भी उनके सभी आग्रह बह गये और अधरों पर रह गया मात्र 'राधा' नाम । वह अनुभूत लीला नीचे उल्लिखित की जा रही है ।

सर्वत्र राधा–कृष्ण रूप दर्शन करते राधा बाबा

महाभाव दिनमणि श्री राधाबाबा

चतुर्थ भाग

मालिन, नापित, रजक एवं हड्डिप कन्याओं की कथा
सारिका भाव एवं तृण भाव

परम पू० गुरुदेव को यह अनुभूति लगभग १९४० ई० में हुई थी । पू० गुरुदेव का चित्त उन दिनों जगत् को सर्वथा छोड देता था । वे रम जाते थे व्रज के अनोखे राज्य की रसमयी लीलाओं में । जब तक जगत्-प्रपंच की पूर्णतया निवृत्ति नहीं होती, लीलाजगत् का चित्तभूमि में अवतरण असंभव ही है । लीलाजगत् और विश्वप्रपंच दोनों एक साथ रहें; यह तो पूर्णतया अनहोनी सी ही बात है ।

लौ, महा-महा रसिकशेखर पू० श्रीराधाबाबा का चिन्मय मानस किशोरीरानी के निकुंज दर्शन करता हुआ निष्पन्द है । अहा ! कैसा सुन्दर यह कदम्बतरु है ? कैसी निराली हरीतिमा है इसकी ? किसी भी महाभाग्यवान जीव के नयनों में मात्र एकबार ही यह दिव्य अप्राकृत हरीतिमा आ जाय, बस सदा-सदा के लिये विषम भवसागर की विष-ज्वाला प्रशमित हो जाय । यह तरुराज निरन्तर पुष्पसौरभ का संचार कर रहा है । कैसी निर्मल घ्राण है इसकी । काल के नियमों से अतीत इसमें कभी पतझड़ नहीं आती, न ही कभी यह पुष्परहित ही होता है । यह सदा एकरस मनोज्ञ एवं सुख-शीतल ही रहता है । पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म सभी ऋतुओं में, बारहों मास एक रस सतत इसके अंग पुष्पभार से नमित ही रहते हैं । सदैव कुसुमित, इसकी शोभा से दसों दिशायें कैसी उद्भासित हो रही हैं । यह बड़भागी तरुराज इसीलिए ऐसा अलौकिक शोभासम्पन्न है क्योंकि इसकी छाया में, इसके स्वर्णिम रत्नजटित आलवाल पर, इसी वृक्ष के कुसुमों के आस्तरण पर आज नित्यनिकुंजेश्वरी भानुनन्दिनी, कृष्णप्रिया विराजित हैं । अपने कैशोर की मौज में भरी किशोरी की कैसी अप्रतिम शोभा है ? अहा ! प्राण-प्रिया किशोरी अचिन्त्य एवं अप्रतिम रूप राशि का उच्छलित महासमुद्र ही हैं ।

अहा ! गोलोक धाम में साक्षात् भगवतीलक्ष्मी जिनके चरणसरोजों की परिचर्या करती हैं, हंसवाहिनी सरस्वती जिन्हें निरन्तर वीणा श्रवण कराती हैं, और पार्वती व्यजन सेवा करती हैं, असमोर्ध्व ऐश्वर्यलक्ष्मी जिनकी नित्य सहचरी हैं, फिर भी जिस प्रकार साधारण प्राकृत गोपी किसी पक्षी के संग क्रीड़ाकौतुक कर रही हों, वे वन की इस सारिका पक्षी से वार्ता करतीं लीला-रस-पान में आत्म विस्मृत हैं ।

रानी की सुरभित श्वास-प्रश्वास से हिलोरें लेतीं उनकी नासा-बेसर उन के आननसरोज पर कैसी फब रही है ? अहा ! मन्दमलय समीर भी इन

प्रश्वासों की सहायिका हुई बेसर को चलायमान कर, रानी के होठों को अनुरंजित कर रही है । रानी के नयन-सरोजों में कैसा अप्रतिम शील है और रह-रह कर अकारण ही लज्जा का जो उन्मेष इन नयनों में हो उठता है, वह तो नेत्रों की शोभा को सहस्रगुनी कर दे रहा है । ये कर-कंकण कैसी मधुर ध्वनि मुखरित कर उठे । ओह ! इस चंचल सारिका ने रानी के कंकणों पर अपना आसन जो लगा लिया । अहा ! कैसी सुमधुर मुसकान रानी के अधरों पर नाच गयी । वे अपनी ग्रीवा को तनिक झुकाकर सारिका को कैसी प्यार और मनुहार भरी दृष्टि से निहार रही हैं । वामहस्त पर सारिका को बैठाये वे अपने दक्षिण कर-सरोरुह से उसकी पंखों भरी पीठ को शनैः शनैः सहलाने लगती हैं । फिर अतिशय प्यार से उससे वार्तालाप करती हुई प्रश्न करती हैं- "सारिके ! कुछ खाओगी ?" और पास ही रखे भाँण्ड से कुछ द्राक्षा निकालकर उसके विकसित मुख में दाहिने हाथ से खिलाने लगती हैं । और लो ! सारिका को इतना प्यार मिले तो शुक क्यों चूके ? वह भी अत्यंत उद्धत हुआ, बिना अनुमति लिये ही रानी के वाम-बाहुदंड पर ठीक सारिका के पार्श्व में ही आसीन होगया ।

अरे ! कमलनाल जैसी सुकोमलतम कंचनवर्णी रानी की भुजा तो कर-कंगनों के भार से ही बोझिल है, फिर इन पक्षीद्वय के बोझ से क्या दुखने नहीं लगेगी ? इन मूर्खों को तो इस भुजा पर बैठने में तनिक संकोच भी नहीं हुआ ? नहीं, नहीं, ये पक्षी इतने निर्भार हैं कि रानी को इन्हें अपने बाहु-दंड पर बैठाने में सुख ही अनुभव हो रहा है ।

अहा ! कैसी महोदार शिरोमणि हैं किशोरीरानी । वे शुक पक्षी की भी हरित्पीठ अतिशय प्रेमोद्रेक से सहलाने लगीं और उसके मुख को भी आग्रहपूर्वक विकसित करवा के उसमें अपने हाथों से बादाम , द्राक्षा और मिश्री देने लगीं । वात्सल्यजनित परम आनन्द की लहरें रानी में उठ रही हैं, एवं दोनों पक्षी ही, नहीं समस्त वन ही उसमें सतत बह रहा है ।

रानी के नेत्रों से अथाह प्रीतिसिन्धु उमड रहा है, इन दोनों वन-पक्षियों पर । मानों दो नेत्र नहीं, अतीत एवं अनागत की समस्त प्रीति सम्पदा को बहाने वाले निर्झर-द्वय हों। अहा ! रानी के ताम्बूल रंजित होठों से मधुस्यंदी वाणी मुखरित हो उठी। मानो मनोरम रस का उत्स ही फूट पड़ा हो -- "सारिके ! कुछ गान सुनाओ न ?" और इतना संकेत मिलते ही भला सारिका

शान्त रह पाती ? कदापि नहीं । उसने अपनी मधुर और सुरीली स्वर लहरी में गायन प्रारंभ कर दिया –

जय जय कृष्ण मनोहारिन् !

वाह री सारिका, कैसी सुरीली ध्वनि है तेरी ! क्या ही वाणी में लोच है, मुरक है, बार-बार स्वरों को तार और मन्द्र सप्तकों में घुमाती हुई वह एक ही पंक्ति का उच्चारण कर रही है --

'जय जय कृष्ण मनोहारिन् !'

और अब शुक भी कैसे शान्त रह पाता ? उसने सारिका के स्वर से भी अपने स्वर को अधिक परिष्कृत कर गायन प्रारंभ कर दिया --

जय वृन्दावन प्रियः . . .

और तब सारिका ने पुन: तान छेड़ी --

जय जय कुंकुम लिप्तांग . . .

और सारिका की स्वर लहरी थमे इसके पूर्व ही शुक ने छन्द पूरा कर दिया --

जय गोपी विमोहन : ।

और रानी के सम्मुख तो अपने प्रियतम की विलक्षण छवि नाच उठी- अहा ! प्रियतम प्राणसुन्दर कितने मनोहर हैं, सरसता में तो ये मेघमाला के सदृश हैं, इनसे मरकत मणि को हेय बनाने वाली कान्ति की किरणें फूट रहीं हैं, लावण्य और माधुर्य का अपरिसीम सागर जैसे लहरा रहा हो, नीलकमल के समान सुकोमल अंग-प्रत्यंग हैं । श्रीअंगों में पीताम्बर झलमला रहा है और वक्षस्थल पर रंगबिरंगी बनमाला झूल रही है । अंग-अंग पर प्रीति लहरा रही है । विविध प्रकार की रस-क्रीडा के वे अनुपम आकार हैं । अहा ! कैसी सुभग कृष्ण-कुंचित, घुंघराली अलकावलि है । केशपाश पुष्प मालाओं से अलंकृत हैं । कैसी मनमोहक चूड़ा की कान्ति है । चमकते हुए ललाट पर चन्दन की खौर अत्यन्त शोभा दे रही है । मध्य में गोरोचन का सुन्दर तिलक है और दोनों ओर अलकें झूल रही हैं। लीलायुक्त चढी हुई भौंहों के विलास से वे रानी का चित्त अपहरण कर रहे हैं । उनके झूमते हुए कमनीय नेत्र बीच में नीलकमल और प्रान्तों में लालकमलों की छटा धारण किये हुए हैं । गरुड़ की चौंच के समान नुकीली नासिका के अग्रभाग में मुक्ताफल लटक रहा है । इससे उनकी शोभा बढ़ गयी है ।